सोहागबिन्दी

तथा

अन्य नाटक

लेखक

गणेशप्रसाद द्विवेदी एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९३५

[मूल्य १)

प्रोफेसर अमरनाथ झा,
अध्यक्ष अँगरेजी विभाग,
प्रयाग-विश्वविद्यालय।

पत्रपुष्प

पाश्चात्य नाटक के मेरे एक-मात्र गुरु श्री
पंडित अमरनाथ झा की सेवा में
लेखक की यह प्रथम कृति
सादर, सस्नेह भेंट ।

—लेखक

दो शब्द

हिन्दी में मौलिक नाटक का नितान्त अभाव है, विशेषकर 'आधुनिक' नाटक का। मुझे यह अभाव बहुत दुःख देता है। नाटक-लेखक में जिस प्रकार की और जितनी प्रतिभा, शिक्षा और अभ्यास की आवश्यकता है वह मुझमे है या नहीं मुझे नहीं मालूम, शायद नही है। अभी तक मेरी नितान्त नगण्य साहित्य-सेवा कुछ अन्य क्षेत्रों तक ही परिमित थी। पर धुन ही तो है। हिन्दी नाटक को उन्नत करने की महत्त्वाकाक्षा, इस दिशा में अपनी शक्ति-परीक्षा, और कुछ इस प्रकार के मौलिक साहित्य निर्माण की धुन जो संसार के श्रेष्ठ गद्य-साहित्य के साथ कधा मिला सके, बस इन्हीं कारणो से नाटक लिखना मैंने अपना धर्म समझ लिया है। सफलता या असफलता की चिन्ता प्रायः मुझे नहीं सतानी। मै अपना कर्त्तव्य कर चलता हूँ—

इस छोटी-सी पुस्तक मे मेरे छः एकाकी नाटक सगृहीत हैं जिनमे पॉच 'सरस्वती', 'माधुरी' तथा 'सहेली' आदि पत्रिकाओ में समय समय पर प्रकाशित हो चुके हैं। अन्तिम नाटक 'सर्वस्व-समर्पण' 'हस' मे भेज चुका हूँ,

पर उसके प्रकाशित होने के पहले ही यह सग्रह यंत्रस्थ हो गया।

इन नाटको के सम्बन्ध में मुझे विशेष कुछ कहना नहीं है। यह जैसे हैं वैसे आपके सामने हैं। यों तो विषय इन सभों का ही सामाजिक है, पर इनके द्वारा समाज-सुधारक बनने की धृष्टता मैं नहीं करने का। नाटक के रूप में कोई सुन्दर वस्तु का निर्माण ही मेरा ध्येय हो सकता है।

यहाँ एक बात नाटक के 'टेकनीक' के सम्बन्ध में मुझे कहनी है। 'शर्माजी शीर्षक नाटक में मैंने टेलीफोन-द्वारा दो पात्रों में कथोपकथन कराया है। छपते समय मेरे एक मित्र ने कृपा कर मुझे सुझाया कि यह 'टेकनीक' की एक भद्दी भूल है। कदाचित् हो। इसके निर्णय का भार आधुनिक रंगमच से सुपरिचित रसज्ञों पर रहा। जो हो, मैं उसे बदल न सका। 'टेकनीक' के बोझ-तले कला को कुचल देने का मै पक्षपाती नहीं हूँ। और फिर उसी रूप में वह नाटक 'सरस्वती' मे छप चुका था, इसलिए और भी कुछ परिवर्तन करने की प्रवृत्ति नहीं हुई। पर हिन्दी का राष्ट्रीय रंगमच तो कोई अभी तक है ही नहीं। होने की जो आशा थी भी उस पर शायद सदा के लिए ही इस टाकी-युग ने पानी फेर दिया।

इस दृष्टि से नाटक लिखना ही व्यर्थ होगा, क्योंकि विद्वानों का कहना है कि नाटक वही है जो रगमच पर सफल हो, पर जब रंगमंच ही नहीं है तो नाटक सफल कहाँ होगा ? मेरा भी विश्वास पहले यही था, पर पाश्चात्य नाटक का इतिहास और विकास देखते हुए मै अपना विचार दोहराने पर विवश हुआ हूँ। अब मेरा विश्वास है कि रगमच हो या न हो, टाकी का पारा चाहे जितना चढे पर नाटक रहेगा। मेरी धारणा होगई है कि इन कठिनाइयों के होते हुए भी केवल साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी नाटक का एक उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित है, और जो कदाचित् बहुत दूर नही है।

—लेखक

नाटक-सूची

सोहागबिन्दी

नाटक के पात्र

काली बाबू—एक स्टेशन मास्टर।
प्रतिभा देवी—उनकी पत्नी।
विनोद—एक कालेज का छात्र, काली बाबू का मौसेरा भाई।
बनकटा महराज—स्टेशन का खलासी।
गजाधर—एक अहीर।

पुरोहित, काली बाबू की मामी तथा कुछ अन्य स्त्री-पुरुष।

दृश्य १

[बी० एन्० डबल्यू० आर० का एक छोटा स्टेशन। यहाँ पैसेजर ही खड़ी होती है, वह भी एक मिनट के लिए। पाएटिंग किया हुआ लाल ईंटो का एक छोटा-सा कमरा। सामने थोड़ा-सा छाया हुआ बरामदा। बरामदे के एक ओर लकडी की एक बेंच पड़ी हुई, मुसाफिरों के बैठने के लिए। इसी के बगल ही मे लोहे की तौलनेवाली मशीन। कमरे के एक ओर खिडकी, जिसमें टिकट काटने का यत्र रक्खा हुआ है। खिड़की पूरी झिलमिली से ढकी हुई है और नीचे टिकट देने का छोटा-सा सूराख बना हुआ है। भीतर एक मेज पर टेलीग्राफ का यत्र रक्खा हुआ है। दो चार बही-खाते और पुराने कार्बन पेपर बहुत-से अस्त-व्यस्त रूप में

इधर-उधर पडे है। इसी कमरे के पिछवाडे स्टेशन-मास्टर के रहने का 'क्वार्टर' है, जिसमे सिवा उनकी स्त्री के और कोई नही रहता। कमरे के पीछेवाली खिडकी से क्वार्टर पूरा दिखलाई पड़ता है। स्टेशन के एकमात्र अफसर काली बाबू हैं। वे ही टेलीग्राफ करते है, वे ही टिकट भी देते है, वे ही सब करते है। जरूरत आ पडने पर कमरे से बाहर निकलकर सिगनल भी डाउन कर देते हैं, क्योकि उनके एक-मात्र खलासी—बनकटा महराज—जरा चिलम के शौकीन हैं, और 'बीडी तमाखू' की गोष्ठी के लिए उन्हे बस्ती तक जाना पड़ता है। ऐसे मौको पर जरूर देर हो जाती है। पर काली बाबू उनसे कुछ कहते नही। इसके दो कारण हैं। एक तो वे इनके घर का सब काम सँभाले रहते हैं, दूसरे इनमें जात्यभिमान की कमी बिलकुल नही है। काली बाबू ने एक ही बार आजमाइश के तौर पर जरा मुशियाने ढग से इनको डॉटने का साहस दिखाया था, इस पर ब्राह्मणदेव ने वह रौद्र रूप धारण किया कि तब से काली बाबू चौकन्ने ही रहने लगे। काली बाबू की उम्र बाईस साल से ऊपर न होगी, पर महराज चालीस से कम नही। काली बाबू कुछ ऊँघते हुए भीतर की कुर्सी पर हुक्का पी रहे है। तीसरा पहर दिन]

[महराज का कुछ देहातियो के साथ झगड़ते
हुए प्रवेश]

काली बाबू—[तद्रा से चौककर झल्लाहट के साथ] आफत है इन लोगो के मारे ! अरे भाई लडने के लिए तुम लोगों को कोई दूसरी जगह नहीं मिलती ? यह स्टेशन है ।

महराज—[बडे क्रोध से चिल्लाते हुए एक देहाती का हाथ पकडकर भीतर खीचते हुए—दो तीन और भयभीत से बाहर ही खड़े रह जाते हैं] हजार दफा इन बदमासन से कहि चुके कि लैन किनारे गोरू न चरावा करौ, मुला के सुनथै । अब के सब ओलियाय न दिहा त बनकटा नाही, चमार । [हाथवाले देहाती को तर्जनी से धमकाते हुए बड़ी-बड़ी आँख निकाल कर] सबका गुरू इहै गजधरा है । अहिर है न । अइस बेपीर कौनौ जाति नही होत । कौनौ गोरू कटि जाय, मरि जाय, तोहार का, गऊहत्या से त ई मनई न डेराथै !

गजाधर—[लापरवाही से खीस निकालते हुए] अरे त महराज—पू—कहाँ जाई पू चरावै पू—।

बाबू—[आँखे मलकर जरा चैतन्य हो कुर्सी पर कुछ सँभलकर बैठते हुए] भई, तुम लोग दरअसल बडे

बदमाश हो। जानते नहीं, अगर कोई जानवर यहाँ कट जाय, तो हमारे ऊपर एक हजार रुपया जुर्माना हो जायगा। अब खबरदार, अगर कभी कोई जानवर यहाँ दिखाई पड़ा!

गजाधर—[हाथ जोड़कर] सरकार पू कहूँ चारा त हवै नहीं न, गोरू कहाँ जायँ, कसन जिएँ पू हजूर?

बाबू—[चिल्लाकर, खड़े होकर] अरे तो मै क्या करूँ बदमाश! हमारी नौकरी लेगा? लैन की घास चराकर तेरे गोरू पलेंगे तो इससे मेरा क्या फ़ायदा होगा? मै क्यो हुक्म देने लगा?

महराज—[उसी क्रोध की मुद्रा से] कहा, बाबू के सेर भर दूध पहुँचाइ जावा करौ, तौन सुनबै न किहिस [काली बाबू पीछे घूमकर इधर-उधर घूमने लग जाते हैं]।

गजाधर—अरे महराज, सेर भर त कुल दुधवै होथै त कसत करी पू।

बाबू—[महराज से बनावटी क्रोध से] क्या बेसिर-पैर की बातें करते हो महराज, मुझे नही चाहिए इन बदमाशो का दूध।

गजाधर—अरे सरकार, पू जवन होइ सकी पाउ आधसेर पहुँचावा जाई पू, हाँ पू।

बाबू—क्या खामखाह के लिए पू पू कर रहा है? जा, निकल यहाँ से।

गजाधर—सरकार दुइ पौआ माँ फरक न परी। मुदा महराज से कहि देइ ऊपर से खफा न होवा करइँ पू। अबै काल्हिन सेर भर दहिउ पीइन है।

बाबू—[स्वर बदलते हुए महराज से, कुर्सी पर बैठकर हुक्का सँभालते हुए] बदमाशो से हजार दफे कहा कि जब मवेशी लाओ तो खुद मौजूद रहा करो। पर कौन सुनता है। महराज, अगर कोई साथ मे न हो, तो पकड़कर मवेशीखाने मे दाखिल कर दिया करो। अब निकालो इनको बाहर।

[भद्दे तरीके से सलाम करते हुए चरवाहो का प्रस्थान। गजाधर के मुँह पर वही अर्थशून्य हँसी]

[चरवाहो का प्रस्थान]

महराज—[उन लोगो के साथ जाकर लौटता है, इधर काली बाबू अपना रेलवे का काला कोट और काली टोपी, जिसके आगे निकल के अँगरेजी अक्षरों में 'स्टेशनमास्टर' लिखा हुआ है, पहन लेते हैं, और कुछ काग़जपत्र सँभालकर खडे हो जाते हैं] बाबू, गाड़ी आय रही है।

बाबू—आई तो आखिर। आज सिर्फ सवा घटे लेट है। हम यहीं हैं। देखो, अगर कोई उतरे तो टिकट यही माँग लाना। कौन जाय। [बाबू फिर कुर्सी पर बैठकर हुक्का सँभालते है। महराज हरी और लाल दो झडियाँ लेकर बाहर जाता है। बाहर गाड़ी का शब्द और साथ ही गाड़ी छूटने की सीटी।]

[महराज एक अजनबी के साथ भीतर घुसता है। अजनबी करीब २५ वर्ष का सुन्दर युवा है और अच्छे कपडे पहने है। देखने से कालेज का विद्यार्थी जान पडता है। खाकी निकर, ऊनी होज, कनवास का जूता, कालरदार बनियाइन और नीला ब्लेजर पहने है। आधुनिक फैशन के लम्बी कलमवाले बाल कटे है। हाथ मे एक चमडे का मॅझोला सूटकेस है।]

आगन्तुक—मैने कहा, काली भैया को आदाब अर्ज है। [कहकर मुसकुराता हुआ एक ओर खडा रह जाता है। काली बाबू की तन्मयता भग होती है और ऊपर सिर उठाते ही पहचानकर बडे तपाक से मिलते हैं]

काली बाबू—अरे विनोद! ओफ ओह—भला इतने दिन बाद तुमने खबर तो ली!

विनोद—क्या करूँ, छुट्टी नहीं निकाल पाता था। हर वीकएंड को आपके यहाँ आने की सोचता हूँ। पर कोई-न-कोई इंगेजमेंट निकल ही आता है। उधर घर गये पूरे छः महीने हो गये। दशहरे की इतनी बड़ी छुट्टी सारी पिकनिक में खतम हो गई। फादर सख्त नाराज हैं। पर आज आपके यहाँ आ ही गया। खासकर एक दफा भाभी को देखने की बड़ी इच्छा थी।

काली बाबू—[मीठे तिरस्कार के स्वर से] चलो, हटो! चार वर्ष हम लोगों के यहाँ रहते हो गये, और आज आपकी सूरत दिखलाई पड़ी है। उनसे मैंने सालों से कह रक्खा है कि मेरा एक मौसेरा भाई यहाँ कालेज में पढ़ता है और उसने हर शनिवार यहाँ आने का वादा किया है। वह हमेशा रास्ता देखती हैं। जब कोई नहीं आता तो ऐसा अफसोस करती है कि बस। भई, असल बात तो यह है कि यहाँ उनका जी बिलकुल नहीं लगता। न आदमी न आदमजात। कोई अच्छी बस्ती भी तो नहीं है पास में। रोज जिद करती हैं कि किसी बड़े स्टेशन में बदली कराओ; पर भाई मेरे बस की बात हो तब तो। मगर यहाँ एक तरह से अच्छा भी है। बड़ी शांति है।

विनोद—[गम्भीर होकर] आप लोगो ने चार चार वर्ष इस जगल मे बिता दिये। भाभी भी जब से शादी हुई, तब से शायद इस क्वार्टर से बाहर नही निकली। यह जुल्म है। ताज्जुब है, जो अब तक वे पागल नही हो गई।

काली बाबू—[हाथ पकड़कर प्रेम से कमरे के बाहर घसीटते हुए] अच्छा, चलो तो, तुम्हारी मुलाकात करावे।

दृश्य २

[स्टेशनमास्टर साहब का क्वार्टर। एक कमरा। एक ओर एक पलँग और दो कुर्सियाँ। नीचे एक चटाई। एक ओर खूँटी पर कुछ कपड़े और किताबे। कमरे के दूसरी ओर एक दरवाजा, जो भीतर से बन्द मालूम होता है। काली बाबू और विनोद का कमरे में प्रवेश। पीछे-पीछे महराज सूटकेस लिये हुए आते हैं और उसे एक ओर रखकर बाहर चले जाते हैं]

काली बाबू—[बन्द दरवाजे को धीरे से थपथपाते हुए] अरे सुनो तो। यह देखो, कौन आये।

[एक युवती का प्रवेश। वयस अठारह वर्ष। रग गोरा। शरीर सुगठित और सुन्दर। एक साधारण साड़ी पहने हुए। यह काली बाबू की पत्नी प्रतिभादेवी

हैं। आप जरा जल्दी से दरवाजा खोलकर कमरे मे आती हैं, पर पति के साथ एक अपरिचित युवक को देखते ही फौरन घूँघट खीचकर भीतर जाने को होती हैं]

काली बाबू—[हँसते हुए] अरे सुनो तो, भागती क्यो हो? यह तुम्हारे देवर विनोद बाबू हैं। हमारे मौसेरे भाई हैं। शादी मे थे, तुमने पहचाना नही?

[प्रतिभा जरा चौंककर थोड़ा-सा घूँघट हटाकर विद्युत्गति से एक दृष्टि विनोद पर डालती हैं और फ़ौरन निगाह नीची कर लेती हैं]

विनोद—[झुककर प्रणाम करता हुआ] भाभीजी, प्रणाम। पर मुझसे अगर इतनी शरम करेंगी, तो मै चला। [जरा चलता हुआ पीछे को देखता है। प्रतिभा लजाती हुई फिर उसकी ओर देखती है और धीरे-धीरे फिर घूँघट खोलती है। बाहर के दरवाजे से महराज दौड़ा हुआ आता है]

महराज—[काली बाबू से] बाबूजी, टेलीगिराफ।

काली बाबू—अच्छा आया। [विनोद से] भई, तुम बैठो, बाते करो, चाय-वाय पियो। मै स्टेशन का काम निपटाता आऊँ। [कहकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही प्रस्थान। विनोद और प्रतिभा कुछ

देर एकटक उन्ही की ओर देखते रह जाते है। फिर धीरे-धीरे एक दूसरे की ओर मुडते है]

विनोद—बडी कठिन नौकरी है! यहाँ इस जगल मे आपका जी कैसे लगता होगा? [प्रतिभा जरा घूँघट नीचा कर लेती है। एक दीर्घ नि:श्वास]

प्रतिभा—आप कपडे उतारिए, कुछ नाश्ता कीजिए।

विनोद—[कुर्सी पर बैठता हुआ] भाभीजी, आप मुझे 'आप' क्यो कहती हैं? आप अगर सचमुच इतना तकल्लुफ करेंगी तो बस हो चुका। मुझे घबराकर भागना पडेगा।

प्रतिभा—[आधा घूँघट धीरे-धीरे उठाते हुए और आँचल का कोना थोड़ा-सा दाँतो मे दबाते हुए] अच्छा बैठो तो। भागने की इतनी उतावली क्यो है? क्या नई बीबी छोड़ आये हो?

विनोद—नहीं, बीबी तो अभी नही है। जब होगी, तब आपको चलना होगा। चलेगी न?

प्रतिभा—ज़रूर, भला—[कहकर आलमारी खोलकर कुछ नाश्ते का सामान तश्तरी मे रखकर सामने लाती है] लो, पानी तो पियो। इस जगल मे और क्या धरा है, जो तुम्हे खिलाऊँ।

विनोद—क्या खूब! भाभी के हाथ की चीजे, ये मेरे लिए किस न्यामत से कम हैं।

प्रतिभा—ओफ ओह—रहने भी दो! अच्छा यह बताओ रात को क्या खाओगे? कुछ कचौडी वगैरह बनाऊँ?

विनोद—इसके लिए माफी चाहता हूँ भाभी। पकवान मै कभी खाता ही नही। मुझे रोटी-चावल सबसे अधिक पसन्द है।

प्रतिभा—मगर यहाँ अच्छे सालन-वालन की आशा न रखना। रोटी क्या अच्छी लगेगी। ऐसी मनहूस जगह है कि यहाँ कुछ मिलता ही नही।

विनोद—यह आपने क्या शुरू किया भाभीजी! इतना तकल्लुफ तो—

प्रतिभा—तकल्लुफ नही भाई। तुम क्या रोज आते रहते हो? न-मालूम किधर चाँद उगा, जो आज रास्ता भूलकर इधर आ पडे। चले जाने पर शायद कभी याद भी न करोगे।

विनोद—[जरा झेपते हुए] गुस्ताखी माफ हो। आप वह भाभी नहीं हैं, जो एक बार देखने पर भूल जायँ!

[प्रतिभा शरमाकर सिर नीचा कर लेती हैं, कुछ देर के लिए दोनो निस्तब्ध]

प्रतिभा—कै दिन की छुट्टी है ?

विनोद—[चौककर मानो सोते से जगा हो] छुट्टी कहाँ ! मुझे कल ही सुबह की गाड़ी से चले जाना होगा ।

प्रतिभा—पागल तो नही हो गये ! कल तुम्हारी दावत होगी ।

विनोद—अगर ऐसा है, तो रहना ही पडेगा ।

[फिर कुछ देर दोनो चुप रहते है ।]

विनोद—देखता हूँ, स्टेशन का सारा काम भाई साहब को ही करना पड़ता है । उन्हे तो इतनी भी फ़ुरसत नही कि इस तनहाई मे आपके पास दे़ा मिनट बैठे या खुद भी कुछ आराम कर सके । अकेले इस तरह आपका वक़्त कैसे कटता होगा । मै तो हैरान हूँ ।

[शरमाकर, जरा हँसकर तेजी से प्रतिभा बग़ल के कमरे मे चली जाती है, विनोद मानो अपने कथन पर पश्चात्ताप करता हुआ कुछ देर सिर नीचा किये रहता है । सहसा उसी तेजी से प्रतिभा वैसे ही हँसती हुई अत्यन्त प्रसन्न-सी फिर कमरे मे आती है]

प्रतिभा—अभी तक खाया नही क्या ? चुपचाप क्या सोच रहे हो ? मेरे सामने शरम आती हो तो चली जाऊँ ।

विनोद—शरम नही, सोच रहा था – [सिर ऊपर उठाकर अप्रतिभ-सा] अगर जल्दी मे कोई वैसी बात निकल गई हो तो खयाल न करिएगा।

प्रतिभा—क्या—[विनोद सिर नीचा किये चुप] आखिर किस चिन्ता मे डूब गये ? कुछ बोलो भी।

विनोद—अब क्या लड़ूँ आपसे ?

प्रतिभा—[खिलखिलाकर तनकर खड़ी होकर] आओ, देखे—है ताकत। [कहकर विद्युत्‌गति से भीतर प्रस्थान। भीतर से आई हुई खिलखिलाहट की मधुर ध्वनि। विनोद आँखे फाड़कर उधर देखता है, जिस ओर वह गई है। नीचे के होठ दाँतो से कुछ दबाकर मधुर हास्य। कुछ देर बाद खाना शुरू करता है। थोड़ी देर बाद शात भाव से एक हाथ मे एक ग्लास पानी और दूसरे मे पानो की तश्तरी लिये हुए प्रतिभा का प्रवेश। कुछ देर तक मानो बरबस बनावटी गम्भीरता से दोनो एक दूसरे को देखते रहते है, फिर दोनो एकाएक, साथ ही अकारण, एक दूसरे को देखकर खुलकर हँस पड़ते हैं, मानो जन्मजन्मान्तर के साथी हो। फिर धीरे धीरे हँसी रुकती है। विनोद उनके हाथ से पानी लेकर पीता और पान खाता है।]

विनोद—[सकपकाता हुआ खडे होते हुए] जाऊँ जरा स्टेशन की तरफ़ घूम आऊँ। देखूँ, भाई साहब वहाँ क्या कर रहे हैं।

प्रतिभा—[मीठे ताने के स्वर मे] इस दरबे मे अभी दस मिनट मे ही तबीअत घबरा उठी क्या? [विनोद उनके मुँह की ओर देखकर जरा हँस देता है।]

प्रतिभा—[अर्थ-पूर्ण मुसकुराहट, हाथ पर ठुड्डी रख दरवाजे के सहारे] हँसे—[जल्दी से] अच्छा क्यो हँसे?

विनोद—हँसा क्या, सोचता हूँ, अगर मै दस मिनट मे घबडा गया, तो चार बरस में आपका क्या हाल होना चाहिए!

प्रतिभा—[निराशासूचक मुद्रा से] हम औरतों की बात छोड़ो। हम लोगो के लिए और उपाय ही क्या है [म्लान हँसी की क्षीण रेखा, फिर एकाएक गभीरता] अच्छा होते आओ। मै इधर थोड़ा ब्यालू का इंतजाम कर दूँ। लो, वह महराज भी आ पहुँचे। मगर जल्दी आना।

[सब्जी वगैरह लिये हुए महराज का प्रवेश।
विनोद का प्रस्थान]

प्रतिभा—महराज, आज जरा अच्छा खाना बनाना। शहर मे बाबू आये है।

महराज—[दंभपूर्ण हँसी] अब जस हमसे बनी—बहूजी, अइस बनाई देई कि इद्र मोहि जायँ, मगर माल चाही।

प्रतिभा—[कुछ रुष्ट-सी] लो न माल, क्या चाहिए? पैसे मै देती हूँ, जो मन मे आवे, ले आओ। मालन मै खुद बनाऊँगी।

महराज—[अर्थपूर्ण हँसी से उसकी ओर देखते हुए] कुछ नाही, आप बैठी भर रहई। बाबू खुदइ दुइ रुपिया दिहेन हैं। कहेन, बस्ती से बढिया तरकारी अउ घी वगैरह लै आओ। चार सेर दूध हम पहिले ही चढाय दिहा खीर के वास्ते। अउर जवन आप कहई।

प्रतिभा—[प्रसन्नता की हँसी] अच्छा तो सब तैयार करो। मै जरा कपडे बदल लूँ। [अन्दर जाती है। महराज सब्जी वगैरह अलग-अलग एक ओर रखता है। विनोद का प्रवेश]

विनोद—भाई साहब कहाँ गये? स्टेशन मे तो नही हैं?

महराज—[खीस निकालकर हँसने की चेष्टा करता हुआ] उइ साहब, बस्ती मे गये है, दरोगाजी का बुलावै।

विनोद—[बनावटी आश्चर्य से] दारोगाजी! क्या मुझे पकड़वाने के लिए।

महराज—[अट्टहास] अरे नाही साहेब, भला अइसा हुइ सकत है [अभिज्ञतासूचक स्वर में] हियाँ जौन दरोगाजी हैं, तौन बडे सौखीन है। सब बाजा, फोनोगिराफ, तबला, हरमुनियाँ, सब हैं उनके पास। उनही का बुलावै गये है। पहले हम ही से कहेन रहै कि जाओ बुलाइ लाओ दरोगाजी के, ई कहिके कि बाबू के भाई आये हैं। तौन हरमुनियाँ बहुत अच्छा बजावत है। कहेओ कि बाजा-ओजा सब लेत आवै। हम कहा, साहेब, ई तो आपै के गये से ठीक होई। बेमतलब साहेब, हाकिम के लगे के जाइ। तौन अपनै गये हैं। हमका दाम दैकै बजार भेजेन सौदा का। आप बइठईं, बहूजी अबहिने आवथै। कपड़ा-ओपडा बदलति अहै। [विनोद आराम से कुर्सी पर बैठकर सिगरेट-केस जेब से निकालकर एक सिगरेट जलाता है। महराज आसन मारकर तरकारी बनाने में लग जाता है।]

विनोद—[एक कश पीकर] महराज, यह तो बड़ी मन-हूस जगह है। भाई साहब यहाँ कैसे रहते हैं, यही नहीं समझ में आता। खासकर भाभीजी; क्योंकि भाई तो तुम्हारे दारोगाजी वग़ैरह के यहाँ बैठकर जी बहला लेते होंगे।

महराज—[बड़ी सहानुभूति से गद्‌गद स्वर में] कुछ न पूछैं साहेब। बहूजी का हद-बेहद तकलीफ हइ। मगर बाबूजी एकर कुछ परवाहै नहीं करते। ओ बेचारी कई दफा कहि चुकी कि कोई अच्छी जगह बदली की कोसिस करौ। मगर ओ मूड़ी उठाय के देखेन तक नहीं। जल्दी-जल्दी आये, खाना खाइन, और भागे। बस, वही खाने के बखत बहूजी का दुइ-एक बात करैक मौका मिलत है, फिर नहीं। बहूजी जहाँ बदली-ओदली के बारे में कुछ कहेन कि बाबू खफा हो जाथैं। बहूजी अपनी कोठरी में चली जाथैं, और उही खिडकी पर बैठ के लैन ओरी देखै लागथैं। मोती अस झरझर आँसू गिरै लागथैं। ऐसे महीना पर महीना, साल पर साल कटत चला जाथै।

विनोद—बस वही हमेशा खिड़की पर बैठी रहती हैं? [स्वगत-सा] By god ! far too severe than solitary confinement even !!

महराज—का कहेन हजूर, हम झूठ नही कहीथै।

विनोद नही, झूठ की बात नही। हम कह रहे थे कि यह तो कालकोठरी से भी ज्यादा खराब है।

महराज—और का हजूर। कालकोठरी त बरू भल। बस बहूजी का एक आसरा है—उहै दूनौ बखत के गाड़ी। चार टिरेन आवथै, दिनरात मे, दुइ एहर से दुइ ओहर से और यह खिडकी से सब देखाथै। बस घटन पहले से ओ बेचारी उहैं खडी टिरेन की बाट जोहत रहथै। जब स्टेशन से गाड़ी 'पास' होथै, तो बड़ी मगन होइ के देखथै, जानो कौनो तसवीर खडी होइ के कोई क बोलावथै।

विनोद—[सँभलकर गौर से सुनने को तैयार हो जाता है] वाह महराज, तुम तो शायरी की तरह बयान करते हो।

महराज—सायर का साहेब, आँखी से जइसन देखा, ओइसइ जस क तस आपसे कहीथै, अउर का।

विनोद—[बढती हुई दिलचस्पी के साथ सामने झुककर] नही-नही, कहते चलो, हमको बहुत अच्छा लग रहा है। हाँ, अच्छा फिर?

महराज—फिरि का साहेब, उहै गाडी क मनई उन कर जिअन-अधार हैं। जब तक गाड़ी जायँ, एक-एक डब्बा के लोगन के बडे ध्यान से देखथै, जानो सब

उनके मुलाकाती हैं। कभौं-कभौं गाडी मे के कौनौ एकै मनई क चेहरा मन मे बैठि जाथै, दिन भर ओही के बात सोचथे औ हमसे सब कहथै, ऊका पहिने रहा, ओकर नाक कस रही, ओकर मुँह कस रहा। फिर कई दिन तक ओही क जिकिर रहथै। जब मालगाड़ी आवथै, तब ओकर डब्बा गिनथै, कौनौ मे चालीस, कौनौ मे पचपन! हमसे कहथै महराज, तुमहूँ गिना करौ। फिर हमसे आपन गिनती मिलावथै। कभौं-कभौ दोनौ के एक गिनती होथै, कभौ फरक पडि जाथै।

विनोद—और जब गाड़ियाँ निकल जाती हैं, तब क्या करती हैं?

महराज—फेरि का, जब तक गाड़ी देखाथै, तब तक एकटक देखत रहथै। जब बिलकुल निगाह से ओझल होइ जाथै, तब उदास होइके सामने क मैदान देखथै। हियाँ से हुआँ तक जब हरियर खेत फैला रहथैं, तब घटन खेत देखथै। उनका एक-एक खेत का मेड मालुम है। [खिडकी से उधर इशारा करते हुए] उहै लम्बा खेत जहाँ खतम होथै, एक छोट-सा गाँव है। उइ माँ दुइ ठो बड़े बड़े पेड़ हैं। ओह के ऊपर जब सुरुज देवता आवथै, तब जानथै कि सभ्भा भइ, और तब मूडी लटकाइकै भित्तर आवथै और दिया-

बाती रसोई-पानी की फिकर करथै। ऐसे दिन बितत जाथै।

विनोद—और जब खेतो में हरी फसल न रहती होगी, तब तो और मनहूस जान पड़ता होगा।

महराज—ए सरकार, तब की न पूछै! जब जेठ बैसाख की दुपहरिया सनसनात रहथै और सब खेतन क माटी फाटि जाथै, तब इहै मैदनवा खाय दौड़थै। असाढ में जब बदरी होथै और ठंडी हवा क झोका आवै लगथै, तब औरौ बेकल होइ जाथै, मुला बैठी रहथै। एक दिन देखा, खूब छकाछक पानी बरसत रहै। हमका टेसन पर से बाबू पान लावै भेजिन। हम कहा, सरकार खुद जायँ, बहू जी अकेल है। कहेन, नही, हियाँ हवा अच्छी है। जाव। छाता लइके पान ले आयन, देखा, बहू जी इहैं खिड़की पर बैठी अहै। बौछार से सारी भीजी अहै। सिर पर टपाटप ओरी चुइ रही है और साथै उनकी आँखी से भी सावन भादौ क झडी लगी है। हम त साहेब देखतै रहि गये। [महराज की आँखे भर आती हैं] हमका देखिकै पुक्का फारि कै रोइ उठी। पर तुरतै सँभरि कै पूछेनि, पान मँगाइन है? अब हम का बोली। खड़ा रहे, फिर पान दिहिन, लैके गये [विनोद सकते की हालत में आ जाता है]।

विनोद—[डबडबाई आँखो और वाष्परुद्ध स्वर से एक दीर्घ निःश्वास के बाद] हूँ—अच्छा फिर ?

महराज—[कधे पर के अँगौछे से आँख पोछते हुए] फेरि का साहेब, ऐसे बरसात, गर्मी, जाडा सब एक ढग से बेचारी का कलपतै बीतथै। पर अब ऊ सब बद है। अब न केउ हँसत देखै, न रोअत। एक दिन बाबू से कहेनि कि ई दोनौ टिरेन मे बड़ा सोर होत है, जब देखो तब घड़घड। बद होइ जात तो अच्छा होत। बाबू कहेन, फिर खिड़की पर खड़ी होकर लोगो का मुँह कैसे देखने को मिलेगा। बहुत जोर कइकै बहू सिर्फ इहै कहेन कि वाह, अपना तो लोगो मे जाकर जी बहला आते हैं, हमको टिरेन में आद-मियो को देखकर दुख नहीं होता ? बाबू का जानी, कुछ सुनेन-समझेन की नाहीं। हमसे कहेन, जाओ, देखो, टेलीग्राफ तो नही आया !

विनोद—[विस्फारित नेत्र, दीर्घ निःश्वास] रहने दो मह-राज, अब नहीं सुना जाता।

[बगल का दरवाजा एकाएक खुलता है। बढिया रगीन नीले रग की रेशमी सारी पहने प्रतिभा का प्रवेश। केशपाश सुव्यवस्थित, भाल मे लाल रग की बिन्दी का टीका, जो उसके गोरे रग पर खूब खिल रहा है। मह-

राज और विनोद, दोनो कुछ देर एकटक उसके इस नवीन रूप को देखते रह जाते है।]

प्रतिभा—[विनोद से अति प्रसन्न मुद्रा से] यह तो मानो आसमान से गिर पडे।

विनोद—आसमान से मै गिरा या आप? सचमुच मैं तो तुम्हे पहचान ही नही सका। इसमे कोई शक नही कि वेश-भूषा से आपका रूप बहुत बढ जाता है।

प्रतिभा—देखती हूँ, तुम्हारा सिर घूम गया। एक साथ ही 'तुम' और 'आप'!

विनोद—जल्दी मे निकल गया, वापस लेता हूँ।

प्रतिभा—वापस मै देने कब लगी। भाई, अब जब 'तुम' शुरू किया है, तो चलने दो। अब खबरदार 'आप' न कहना।

विनोद—अच्छा जो कहिएगा, वही कहूँगा। पर एक बात है। इस नीली, सारी पर यह लाल बिन्दी तो बस—आज सचमुच आपको प्रणाम करने को जी चाहता है।

प्रतिभा—[एकाएक खिलखिलाकर हँस पडती है] क्या बक रहे हो?

विनोद—वाह! भाभी, आप हँसती हैं?

महराज—[तरकारियाँ समेटते हुए खाँसे निकालकर अति प्रसन्न-सा स्वगत] की तो बहूजी जौने दिन आई रही, उहि दिन अस देखात रही की तो आज। [आप ही आप खुशी मे कुछ बडबडाता हुआ बगल के कमरे मे चला जाता है। विनोद या प्रतिभा, कोई उसकी बात नहीं सुनते, न उसकी ओर इनका ध्यान ही आकर्षित होना है]

प्रतिभा—[उसी प्रकार] क्यो हँसी, यह सुनोगे तो तुम भी हँसोगे।

विनोद—अरे बताओ-बताओ।

प्रतिभा—[एक-एक शब्द के बीच मे हँसने के लिए रुकते हुए] बात यह हुई कि बहुत दिन से कपड़े-वपड़े पहनने का कोई मौका तो आया नही था। आज बिन्दी लगाने की तबीअत हुई, और बक्स मे देखा तो बिन्दी की शीशी जो साथ लाई थी, कब की सूखी पड़ी है। आज चार वर्ष से ऊपर हुए। खैर, अब क्या करे, लड़कपन मे हम लोग—[काफी देर तक हँसने के लिए रुकती है]

विनोद—[आनद-विभोर-सा, पर खीझकर] ओफ ओह, अच्छी आफत है, आखिर कहो भी—

प्रतिभा—[जी भर हँस लेने के बाद। विनोद उत्कंठा से व्याकुल] लडकपन मे हम लोग जब दुलहिन-दुलहिन खेलते थे, तो बिन्दी के लिए लाल फूल कुचलकर उसका रग लगा लिया करते थे। सोचते-सोचते वही मज़ाक आज फिर सूझा। यहाँ स्टेशन पर इस तरह के फूल बहुत हैं। जाकर लाई, और फिर—

विनोद—[हँसने के स्थान पर गभीर होकर] मगर मेरे आने से सचमुच इतनी ख़ुशी क्यों, मै तो –

प्रतिभा—[बनावटी गाम्भीर्य] अच्छा तो अब नाराज होती हूँ।

विनोद—[बात बदलकर हँसने की चेष्टा से] नही-नही, यह मेरा मतलब थोडे ही था। बात यह है कि मैं तो किसी लायक हूँ नही। और फिर—

प्रतिभा—[मानो बात लग गई] अगर खराब लगती हो तो यह बिदी मिटा दूँ।

विनोद—[हँसता हुआ नजदीक जाकर प्यार से] भाभी, तुम नाराज हो गई! मेरा मतलब यह था कि यह बनावटी बिन्दी इतनी अच्छी लग रही है, तो सचमुच की बिन्दी लगाने पर न-जाने—

प्रतिभा—[मचलकर जरा हटकर] रहने भी दो, बड़े झूठी तारीफ करनेवाले।

विनोद—[बड़ी गम्भीरता से] यह बात नहीं भाभीजी, सजने पर सचमुच आप बड़ी सुन्दर लगती हैं। मैंने असल बात ही कही है।

प्रतिभा—[आश्चर्य की मुद्रा से सिर हिलाती हुई] अच्छा! यह एक नई बात आज मालूम हुई। मगर इससे तो तुम्हारा कुछ फायदा नहीं होगा। शादी करते वक्त खूब खूबसूरत बहू देख-भालकर चुनना। न हो, मैं ही एक तुम्हारे पसन्द की चुन दूँगी। यह काम मुझे सौंपना।

विनोद—[कुछ बेसुरा होकर] हाँ-हाँ, सो तो होगा ही। [बैठ जाता है]

प्रतिभा—अच्छा, यहीं बैठो, अब चलती हूँ रसोई में।

विनोद—[मुग्धवत्] मैं भी चलूँगा। देखूँगा खाना कैसा पकाती हो।

प्रतिभा—[विचित्र भाव से मुँह देखती हुई] चलोगे?

[बाहर की ओर से महराज का प्रवेश]

महराज—[विनोद से] साहेब, बाबू आये हैं। सग में दरोगाजी औ देवानजी दूनौ हैं। अवर कई जने हैं। एक जने बहुत अच्छा गावत हैं। करमअली

ढोलहा भी है। यहाँ बस्ती भर मे ओकरे मोकालिबे ढोल कोई नहीं बजावत। सब बैठे है। उही पिलेट-फारम पर। पानी छिडकाय के जाजिम बिछाय दीन है। बस आपै क इन्तजार है। बाबू कहेन, जाओ, बोलाय ले आओ। [प्रतिभा और विनोद कुछ देर तक चुपचाप शून्य दृष्टि से एक दूसरे की ओर देखते रह जाते है, फिर दोनो साथ ही मुसकुरा पड़ते हैं]

प्रतिभा—तो जाओ न, देखते क्या हो ? मै यहीं रसोई मे से तुम्हारा बाजा सुनूँगी। [निराश दृष्टि से सिर नीचा कर उपेक्षा-पूर्ण दार्शनिक हँसी के साथ विनोद का प्रस्थान]

महराज—[प्रतिभा से] बहूजी, बाबूजी कहिन हैं, एक पचास बीड़ा के अन्दाज पान लगाइ के बड़ी तश्तरी में भेज देईं। हम इन लोगन का बैठाय के सब ठीक ठाक करिकै आइत है। आप तब ताईं सब सामान ठीक कै राखै। [जाता है]

दृश्य ३

[स्थान वही स्टेशन-मास्टर के क्वार्टर का कमरा। काली बाबू और प्रतिभा पास-पास बैठे है। समय प्रातः-काल। प्रतिभा बहुत सुस्त और उदास है। वेश-विन्यास में काफी लापरवाही स्पष्ट है]

प्रतिभा—विनोद बाबू के उस दिन आने की बात थी। अभी तक नहीं आये। आज एक हफ़्ता हो गया—

काली बाबू—उस दिन इधर से पास तो हुआ था। मैंने बहुत कहा, मगर उतरा नही। कहने लगा, आज बड़ा जरूरी काम है। फिर आऊँगा।

प्रतिभा—[तीव्र उत्कठा दबाते हुए] अब क्या आवेंगे? [निराशा का अस्फुट स्वर]

काली बाबू—[कोट उतारते हुए और उसे प्रतिभा को देते हुए] इसे जरा धोबी को दे देना। बहुत मैला हो गया है।

प्रतिभा—[कोट लेते हुए उसकी जेब मे कोई भारी चीज पाकर] यह क्या है? [निकालने पर एक बढिया उपहार के योग्य सुन्दर सोहागबिन्दी की लाल शीशी पाकर] अरे, यह क्या। यह शीशी किस तरह आपकी जेब मे आई?

काली बाबू—[सकपकाकर सिर पर हाथ फेरते हुए] अरे, यह तो मै तुम्हे देना ही भूल गया था। उस रोज जब विनोद इधर से पास हो रहा था, यह शीशी मुझे ट्रेन ही पर से देता गया था तुम्हारे लिए।

प्रतिभा—[स्तब्ध होकर] क्या खूब! आज चार रोज से

यह शीशी आपकी जेब में पड़ी है और आपको एक दफा भी खयाल न हुआ ?

काली बाबू—[पछतावे की मुसकुराहट] क्या बतावें, काम-काज इतना रहता है कि—तुम तो जानती हो, किसी बात की सुध ही नहीं रह पाती।

प्रतिभा—अच्छा खैर, फिर कब आने को कह गये ?

काली बाबू—कहा तो तुमसे। उसने कोई दिन नहीं बताया। कहा, आऊँगा, जरूर आऊँगा। बस, इतने में ट्रेन भी चलती बनी।

प्रतिभा—अब क्या—

काली बाबू—आखिर इतनी उतावली क्यो ? कहा है, तो कभी-न-कभी आवेगा ही। अब हमारा तबादला भी एक बहुत बडे स्टेशन में होनेवाला है। वहाँ तुम्हारा जी बिलकुल न ऊबेगा। आशा है, अगले साल तक हो जायगा।

प्रतिभा—[उपेक्षा से] उँह, क्या होगा [कहकर शीशी को यत्न से लेकर भीतर की ओर जाते-जाते] हमारे लिए यही ठीक है। बल्कि इससे भी किसी मनहूस जगह बदली करवा लीजिए तो जान बचे। [काली बाबू गौर से उसका मुँह देखते रह जाते हैं]।

दृश्य ४

एक साल बाद

[क्वार्टर का एक बहुत अच्छा कमरा। अँगरेजी ढग से सजा हुआ। कुर्सी, टेबिल, आलमारी, पलँग, तिपाई आदि सभी अप-टु-डेट फर्नीचर मौजूद है। कमरे के दोनो ओर एक-एक और पीछे की ओर दो-दो बड़ी-बड़ी खिडकियाँ है, जिनसे बाहर बडे स्टेशन का दृश्य साफ दिखाई देता है। आराम-कुर्सी पर काली बाबू बैठे हुक्का पी रहे है। देखने से पहले की अपेक्षा काफी साफ-सुथरे और प्रसन्नचित्त है। पलँग पर प्रतिभा एक गाव-तकिये के सहारे पड़ी हुई है। पहले से बहुत क्षीण और म्लान, मानो सालो से बीमार है। आँखें विस्फारित और एक अस्वाभाविक ज्योति से दमकती हुई। चेहरा तमतमाया हुआ, मानो बुखार है]

काली बाबू—कहो, यह जगह पसद आई ? अब तुम्हारा जी भी न ऊबेगा, और तदुरुस्ती भी ठीक हो जायगी। एक दिन रेलवे के बडे डाक्टर को लावेगे। [कुछ ठहरकर] बल्कि आज ही। आज उनका टर्न भी है इधर आने का।

प्रतिभा—[क्षीण स्वर से] क्या होगा, मै अच्छी तो हूँ, मुझे क्या हुआ है ?

काली बाबू—नहीं-नहीं, अब इलाज कराना ही होगा। मै जब कहता हूँ, तुम टाल जाती हो। कहती हो, कुछ हुआ ही नहीं। ऐसे तो काम नहीं चलेगा। जब देखो तब बुखार, सिर में दर्द, खाना कुछ खातीं ही नहीं। बदन सूखकर कॉटा हो गया है।

प्रतिभा—उँह, यह सब तो होता ही रहता है [जरा सिहरकर] मुझे जाडा लग रहा है। जरा कुछ उढा दो [विचित्र भाव से]।

काली बाबू—[लपककर माथे पर हाथ रखकर शरीर का ताप देखने के बाद] ओफ ओह! तवे की तरह बदन जल रहा है [बाहर की ओर देखकर जोर से] महराज! [महराज आते हैं, व्यग्र से] महराज, वह बड़ीवाली रजाई तो लाओ। [महराज जाकर रजाई ले आते हैं। काली बाबू उसे यत्न से ओढाते हैं। प्रतिभा का शरीर गन गन कॉप रहा है, रज़ाई को चारो ओर से समेट कर लेट जाती है]

काली बाबू—[अत्यन्त उत्तेजित सा] महराज, देखो तुम यही बैठो, मै अभी जाकर डाक्टर लाता हूँ।

प्रतिभा—[रज़ाई के नीचे मे अस्फुट स्वर में] तुम रात के जगे हो, जाओ नहा-धोकर खुद ही निकालकर कुछ

खा-पीकर सो रहो, मेरा बुखार अभी उतर जायगा।

काली बाबू—अच्छा, अच्छा, नहाने ही जा रहे हैं, तुम आराम मे पडी रहो।

प्रतिभा—[बाहर सिर निकालकर हाथ से इशारा करती हुई] और देखो! वहीं आलमारी मे कुछ बर्फियाँ रक्खी हुई हैं, रात को बनाई थी तुम्हारे लिए। [आधी उठकर कमर से चाबियो का गुच्छा निकालती हुई] यह चाबी लो। [एक चाबी अलग कर हाथ मे देती हुई] देखो, इसी चाबी से खोल लेना और [फिर लेट जाती है। काली बाबू फिर अच्छी तरह से ओढा देते हैं और जाने को उद्यत होते हैं, पर प्रतिभा उन्हे रोककर कहती हैं]—

प्रतिभा—और देखो मटके मे दही है सँभालकर निकाल लेना, और खाकर यहीं आना और उस सफेद मुरादाबादी कटोरदान मे—

काली बाबू—[रोककर] अच्छा! अच्छा!! तुम जरा खामोश होकर पडी तो रहो, मैं डाक्टर को लिवाता आऊँ।

प्रतिभा—[शरीर पर से रजाई हटाती हुई] नहीं, खाना खाकर आराम से सोना, रात भर तुम्हारी ड्यूटी

रहती है, और नही तो यही आकर हमारे पास बैठना। डाक्टर बुलाना हो—तो इसके बाद बुलाना [कहकर स्थिर दृष्टि से स्वामी के मुँह की ओर देखती है और मुसकुराने की चेष्टा करती है, काली बाबू उसे फिर ओढा-कर महराज को वही मौजूद रहने का इशारा कर तेजी से कमरे के बाहर निकल जाते हैं। कुछ देर सन्नाटा, फिर प्रतिभा सिर बाहर निकालती है और चारो ओर दृष्टि दौड़ाकर महराज से]—

प्रतिभा—महराज, वह किधर गये तुम्हे मालूम है।

महराज—डाक्टर साहेब के क्वार्टर ओर गये है। अब्बै आवत हैं। अब जी कैसन है ?

प्रतिभा—अच्छा है, जरा अँगोछा लाओ, मुझे पसीना आ रहा है।

महराज—[तुरत खूँटी पर से उठाकर तौलिया देता हुआ] अब बुखार तुरतै उतर जाई।

प्रतिभा—[ललाट पर से पसीने की बूँदे पोछती हुई] अब कुछ ठडक मालूम होती है।

महराज—बहूजी, आप नाहक जी खराब किहे रहत है अब हियाँ सहर में कौनो तकलीफ न होई आपके मालुम बिनोद बाबू इही बडे कालिज मे पढ़त हैं कौनौ दिन जायके बुलाय ले आउब।

प्रतिभा—[म्लान मुसकुराती हुई] उँह, अब क्या होगा उन्हे बुलाकर [मानो उसका कठस्वर किसी दूसरे लोक से आ रहा है], अब इन सब बातो का जिक्र न किया करो।

महराज—[अत्यन्त सहानुभूति के भाव मे] ऐसन न कहैं बहूजी, आपका जवन तकलीफ है ऊ है तो बहुत, पर अइस जिउ छोट किहे से का फायदा। हम आजै जहाँ कहीं ओ मिलिहैं बुलाय ले आउब। अब त बाबू के भी तरक्की भई है। भगवान की दया मे सब अच्छै है। यहीं एक खराबी है कि बाबू के कही उठै बैठै के फुरसत नहीं रहत। बेचारे राति भर डिउटी किहेन, दिन भरि सोएन। हुआँ त बरू घरी दुइ घरी बैठत भी रहे, हियाँ उहौ नाहीं।

प्रतिभा—[रजाई फेककर पलॅग से उतरकर टहलती हुई] उँह महराज, तुम क्या अडबड बकते हो। तुम क्या समझते हो, किसी के आने न आने मे हमारी तबीअत खराब होती है।

[दरवाजा खुलता है। एक सूट-बूट, चश्माधारी डाक्टर के साथ काली बाबू का व्यग्र भाव से प्रवेश। स्त्री को आराम से कमरे मे टहलती देखकर जरा प्रसन्नतामिश्रित आश्चर्य मे पड़ जाते हैं। डाक्टर की

उम्र ५० के लगभग, शरीर लम्बा-चौडा 'क्लीन शेवड' चेहरे पर स्वाभाविक प्रसन्नता और सहानुभूति के भाव बहुत स्पष्ट हैं]

काली बाबू—[स्त्री से] अरे, यह क्या, तुम्हे बुखार इस कदर हो रहा है और तुम इस तरह कपडे फेक-फाँक-कर टहल रही हो।

प्रतिभा—[मुसकुराकर हाथ बढाते हुए] कहाँ है बुखार, लो देखो !

डाक्टर—[मुसकुराकर एक कुर्सी पर बैठता हुआ अत्यन्त प्रसन्न और दृढ भाव से] कौन बोलता इनको बोखार होआ। ए तो बौत आच्छा हाय।

काली बाबू—क्या खूब, आपको भी क्या मजाक सूझा। जरा एक्जामिन तो कीजिए।

डाक्टर—हाँ-हाँ, हाम देखेगा, मगर घबराने का कोई बात नेइ हाय [जेब से थर्मामीटर और स्टेथेस्कोप निकालते हुए, थर्मामीटर प्रतिभा को देते हुए] थोडा टेम्परेचर लीजिए तो [प्रतिभा थर्मामीटर आधा मिनट लगाकर उसको देती है, डाक्टर गौर से उसे देखता है]

डाक्टर—कुछ नेइ हाय, बिलकुल नार्मल, आच्छा अब आप थोडा लेट जाइए, हार्ट एक्जामिन करेगा।

[प्रतिभा को यह सब नागवार मालूम होता है, पर पति के जोर देने पर राजी होती है, डाक्टर स्टेथेस्कोप से दिल और फेफड़े वगैरह की परीक्षा करता है]

डाक्टर—ओही बात, जो हाम आगे बोला। इनको कोई डिजीज नेईं, सिरिफ मेंटलवरी हाय। आसल बात खुश रैने आउर खुब ओपन एआर में घूमने आउर एक्सरसाइज का जोरूरत हाय। खूब आच्छा आच्छा खाना दीजिए। फ्रेश फ्रूट्स आउर ग्रीन स्टफ जितना खाय उतना आच्छा, आउर सबसे जरूरी हाय 'चेंज'। कोई पाहाड़ ओहाड़ हो तो आच्छा। कोई दावाइ का काम नेईं, सिरिफ पोर्टवाइन आउर हिमोग्लोबिन सिराप दोनो एक-एक बड़ा चम्मच [डेजर्ट] रात सोते बखत, बास आउर कुछ नेईं। दो माइना में अंगूर का माफिक हो जायगा। ताजा दूध खूब दीजिए।

काली बाबू—सुनती हो, क्या कह रहे हैं?

प्रतिभा—[मुसकुराती हुई] हूँ। मगर यह क्या तो पीने को कह रहे हैं।

डाक्टर—[उठकर टोप सिर पर रखता और स्टेथेस्कोप वगैरह पाकेट में सँभालता हुआ] आच्छा तो हाम चोले [खड़ा होता हुआ]।

काली बाबू—बहुत तकलीफ की डाक्टर साहब आपने, बड़ी मिहर्बानी की आपने, मगर यह तो बताइए, क्या सचमुच इनके इलाज की जरूरत नहीं।

डाक्टर—ई कौन बोलता जे इलाज का जोरूरत नेइ हाय। हाम जो इलाज बोला, उसको आप दिल्लगी समझता। ओही सबसे बड़ा इलाज हाय, आगर आप करने सके। आउर ओइसे बोले तो प्रेसक्रिपशन लिख दे, दस रुपिया रोज का।

काली बाबू—[झेंपता हुआ] नहीं-नहीं, यह मेरा मतलब नहीं था। अच्छा यह बताइए—पहाड ओहाड तो हमारे लिए ज़रा मुश्किल है। कहीं देहात मे भेज देने से काम हो जायगा।

डाक्टर—खूब होगा। थोडा हेल्दी जायगा होना चाहिए।

काली बाबू-- अच्छी बात है। कल ही लीजिए।

दृश्य ५

[स्थान वही, जो चौथे दृश्य मे है। समय सन्ध्या ८ बजे। काली बाबू आरामकुर्सी पर लेटे हुए हुक्का पी रहे हैं। फर्श पर महराज बैठा हुआ है। दोनो चिन्तित हैं।]

महराज—बाबू घरवा बडा सून जानि परत है। बहूजी क चिट्ठी उट्ठी कुछ आवत है कि नाही ? अब तौ अच्छी होइहै। उनके बिना सब घर खाँ-खाँ करत रहत है।

काली बाबू—[जरा झल्लाकर] अरे तो क्या करे घर खाँ खाँ करता है तो। जाके लिवा लाओ न। अभी तो कल ही उनकी चिट्ठी आई है, हर चिट्ठी मे बराबर यही लिखती हैं कि मै अब अच्छी हूँ।

महराज—अरे बाबू ओ त अस कहबै करिहै। [आँखों मे आँसू लाता हुआ] आज छ-छ बरिस भवा, कबहूँ आपसे कहेनि है कि हमका कोई तकलीफ है ?

काली बाबू—[गौर से महराज को घूरते हुए] तो गोया हमसे ज्यादा तुम ही उनको पहचानते हो। अच्छा तो क्या तुम्हारा खयाल है कि उनको हमारे साथ बड़ी तकलीफ थी ?

महराज—बाबू, हम गँवार मनई, दिहाती, आप पढा-लिखा हुसियार होइ के जवन बात न समुझिहैं ऊ हम का समुझब। मुदा एतना जरूर कहब कि ओनका खुस हम कबहूँ नही देखा।

काली बाबू—[विस्फारित नेत्र] महराज, तुम आज घास तो नही खा गये हो ? मैने उन्हे कभी कोई तकलीफ दी है ? कभी कडी बात तक तो कही ही नहीं आज

तक। अब इस पर भी किसी को तकलीफ़ हो तो क्या करे।

महराज—[रहस्य से] इहै त बतिऐ है—मगर सरकार, कसूर माफ रहै, एक बात कहब [आवेश और गभीरता से] आप कभौ ई जानै क कोसिसो त नाही किहेन कि उनके मन में कहाँ कौन दुख है। एक आध दफे बहूजी कुछ इसारा किहे रही पै आप कुछ खियालै न किहेन। फिर बहूजी भी मन बटोरि लिहेनि।

काली बाबू—[लापरवाही से] तुम पागल हो।

[टेलीग्राफ-पिअन का प्रवेश]

पिअन—[एक टेलीग्राम काली बाबू को देता हुआ] बाबूजी, आपका तार है [काली बाबू जल्दी से लिस्ट पर हस्ताक्षर कर तार ले लेते हैं, चपरासी सलाम कर चला जाता है। काली बाबू एक साँस मे तार खोल-कर पढ लेते है और एकदम घबरा उठते हैं]

महराज—[बडी दुश्चिन्ता से] का है बाबूजी?

काली बाबू—है क्या, वही उनकी मामी का तार है, जिनके यहाँ वे ठहरी हुई है। कहती हैं, हालत बहुत खराब है, फ़ौरन आओ, मै चला, देखें भगवान्—[मह-राज डबडबाई आँखो से चिन्ता में डूब जाता है,

काली बाबू जल्दी-जल्दी बाहर जाने की तैयारी मे लगते हैं ।]

दृश्य ६

[एक देहाती गाँव मे छोटा-सा घर। पीछे की ओर दो छोटे-छोटे कमरे दिखाई देते हैं, सामने एक लम्बा बरामदा है, जो खपरैल से छाया हुआ है। इसी बरामदे मे एक लकडी के खम्भे के सहारे एक अधेड़ स्त्री खडी है। आँखे लाल हैं और रोते-रोते सूजी हुई-सी ज्ञान पड़ती हैं। पीछे फर्श पर दो-तीन और स्त्रियाँ उदास बैठी हुई हैं। इसी समय घबराये हुए काली बाबू का प्रवेश। उन्हे देखते ही वह प्रथम स्त्री जो खड़ी थी, पुका फाड़कर रो उठती है।]

स्त्री—सब समाप्त हो गया भैया। आखीर वक्त तक उसकी आँखे खुली ही रह गई, मानो किसी की प्रतीक्षा कर रही है। आज सबेरे ही सब खतम हो गया!

[काली बाबू सन्न होकर वहीं जमीन पर बैठ जाते हैं। पागलों की-सी हालत हो जाती है। आँखे बिलकुल लाल, सूरत भयावनी, बाल रूखे, कपडे भी सब अस्त-व्यस्त]

स्त्री—[अत्यत सहानुभूति से हाथ पकड़कर उठाती हुई] चलो कपडे बदलो, हाथ-मुँह धोओ। वह तो लक्ष्मी

थी, अब चली ही गई। अब उसके लिए जी छोटा न करो। मर्द बच्चे हो। बहुत देर तक तुम्हारी राह देखी, पर आखिर मे लोग ले ही गये, अब सब लौटते होगे, करीब चार-पाँच घटे हुए होगे।

काली बाबू—मामीजी, वह किसी तरह हमे छोड़कर यहाँ आने पर राजी नहीं होती थी। मैने ही जबरदस्ती यहाँ भेजा। आखीर तक यही कहती थी मुझको क्या हुआ है, अच्छी तो हूँ।

स्त्री—[फिर रोकर] यहाँ भी तो उसका यही कहना था। दवा बड़ी मुश्किल से खाती थी। फिर एकाएक कल सबेरे से तबीअत एकदम बहुत खराब हो गई, उसी वक्त तुमको तार दिया।

काली बाबू—कुछ कहती थी ?

स्त्री—कहती तो क्या थी, प्रलाप बीच-बीच मे बकती थी; कभी मुसकुराती, कभी रोती, कोई विनोद बाबू हैं ? दो-एक बार मुसकुराकर आँखे बद कर 'विनोद बाबू, 'विनोद बाबू' कहा। फिर बोली—'हम तुम्हारी बिन्दी की शीशी बडे जतन से रक्खे हुए हैं।' बात बिलकुल बे-सर-पैर की थी। मैने पूछा भी 'बिटिया ये विनोद बाबू कौन हैं।' उसने मुसकुराकर आँखे

बंद कर ली। फिर थोडा देर बाद पूछने लगी 'अभी वे नही आये', मैने कहा, 'बिटिया तार कभी मिल गया होगा, अब आते ही होंगे'। फिर कुछ नही बोली, टकटकी लगाये दरवाजे की ओर देखने लगी और अंतिम घडी तक इसी तरह देखती ही रह गई।
[काली बाबू बडे गौर से, परतु विक्षिप्त-से सब सुनते हैं, मानो कुछ कहने की सामर्थ्य उनमे नही रह गई। इसी समय कुछ लोग बाहर से बरामदे मे आते हैं। सब नगे पॉव और शोकपूर्ण मुद्रा मे हैं और गगा-स्नान कर लौटे हुए जान पडते हैं। ये लोग ध्यान से काली बाबू को देखते हैं। इनमे से एक वृद्ध, जो पुरोहित-से लगते हैं, हाथ मे एक अस्थि खड लिये हुए काली बाबू की ओर अग्रसर होते हैं और बडी सहानुभूति से कहते हैं]

पुरोहित—बेटा इसे ले लो, इसे अपने हाथ से ही प्रवाह कर देना। [काली बाबू चित्रलिखे-से उसे ले लेते हैं और पागलो की-सी हालत मे वहॉ से चल पडते हैं।

दृश्य ७

[स्थान वही दृश्य पॉच का, काली बाबू का क्वार्टर। काली बाबू पागल-से अपने पलॅग पर लेटे है। बगल

मे वही अस्थिखड है। महराज पखा झल रहा है, बहुत खिन्न है]

महराज—बाबूजी [अस्थिखड की ओर इशारा करते हुए] ई आप परवाहि नाही दिहेनि। शास्तर में कहा है।

काली बाबू—[स्थिर गभीर स्वर से] महराज, मै इसे अपने ही पास रक्खूँगा। जरा चाबी का गुच्छा तो लाओ। उनके सदूक मे जहाँ उनकी और सब चीजे हिफाजत से रक्खी है, वही यह भी रहेगी, सदा हमारे साथ। [महराज चाबियो का गुच्छा देता है, काली बाबू संदूक खोलकर एक-एक चीज बड़े यत्न से निकाल-निकालकर पलँग पर रखते है। चीजो मे ज्यादातर कपड़े है, जिनमें से अधिकाश पर लाल-लाल बडे बड़े खून के धब्बे से लगे हुए है।] ये कपड़े सब किस तरह खराब हो गये—ओह—यह बात है। देखो, यह लाल बिन्दी की शीशी कितनी हिफाजत से रक्खी हुई थी [शीशी को बड़ी श्रद्धा से निकालकर देखता है। वह बिलकुल खाली है, फिर मानो आप ही आप कहता है] इतनी हिफाजत से रखने पर भी फिर न जाने कैसे यह गिर पड़ी। [फिर उसी सन्दूक मे से एक चिट्ठी लिखने का काग़ज

निकालता है, जिसके ऊपरवाले पन्ने पर एक अधूरी चिट्ठी-सी लिखी हुई है। वह भी बिन्दी के रंग से लथपथ-सी हो रही है। पूरी इबारत पढी नहीं जाती, तो भी वह आप ही आप विक्षिप्त प्रलाप के तौर पर बडे प्रेम से आँखे फाड़-फाडकर पढने लगता है]

"मेरे न जाने कौन विनोद बाबू, तुम आने को कहकर फिर क्यो नही आये, मै हर घडी तुम्हारी राह देखा करती हूँ। फिर तुम्हे चिट्ठी भी कैसे लिखूँ, तुम्हारा पता तो मालूम नहीं। और फिर किससे पूछूँ तुम्हारा पता। कैसे पूछूँ ?"—इसके आगे पटा नहीं जाता [काली बाबू एकाएक सन्न होकर लेटरपेपर को हाथ मे लिये सन्दूक बन्द कर देते हैं और मूर्च्छित-से पलँग पर पड़ जाते हैं, आँख बन्द हो जाती हैं। थोडी देर मे वह अस्थिखड उनके दूसरे हाथ से फर्श पर आ गिरता है। महराज दीर्घ निःश्वास के साथ कुछ अस्फुट उच्छ्वास-सा करता हुआ बाहर निकल जाता है, मानो यह दृश्य उसके लिए असह्य हो। थोडी देर बाद एक बिल्ली उधर से आती है और उस अस्थिखंड को लेकर खेलने-सी लगती है]

यवनिका-पतन

वह फिर आई थी

पात्र

सिद्धिनाथ कविरत्न—एक ख्यातनामा आधुनिक कवि ।

मनोरमा—इनकी पूर्वकाल की प्रेयसी ।

एक साहित्यिक मित्र—एक नौकर ।

[एक सजा-सजाया कमरा जिसे ड्राइंगरूम और ड्रेसिंगरूम दोनों ही कह सकते हैं। कमरे की सजावट में पूर्वीय और पाश्चात्य दोनों ही रीतियों का एक विचित्र सम्मिश्रण-सा दीख पड़ता है। किनारे की ओर स्प्रिंगदार दो आराम कुर्सियाँ लगी हुई हैं। बीचो-बीच सहारनपुरी एक अठपहला छोटा-सा टेबिल है। इस पर बेलबूटे का बढ़िया काम किया हुआ है। ऊपर एक साफ टेबिलक्लाथ रक्खा हुआ है। इसके चारों ओर बढ़िया रेशमी काम किया हुआ है और एक कोने में बहुत सुरुचिपूर्ण अक्षरों में कुछ लिखा हुआ-सा जान पड़ता है। ऊपर ताजे फूलों का एक गुलदस्ता रक्खा हुआ है। दीवारों पर कुछ बड़े बड़े कलापूर्ण चित्र भी टँगे हुए हैं। एक ओर एक तख्त भी रक्खा हुआ है जिस पर गहरे लाल रंग की एक

चमकीली रेशमी-सी चादर बिछी हुई है। तख्त के पाये चौकोर और एक नये ही ढङ्ग के बने हुए है। तख़्त के सामने दीवार के एक गोटे पर ताण्डवनृत्य मे लीन शिव की एक प्रतिमा है। आस-पास कुछ खिलौने रक्खे हुए हैं। हैं तो वे खिलौने, पर सब कला के विविध नमूनो-से जान पड़ते हैं। एक ओर ध्यानमग्न पद्मासनासीन महात्मा बुद्ध की सौम्य मूर्ति भी शोभा पा रही है। कमरे के एक दूसरे कोने मे एक छोटी-सी किन्तु बडी सुन्दर एक अठपहलू चौकी रक्खी हुई है जिस पर सफेद और पीले रङ्ग के क़रीब आठ दस शङ्ख या घोंघे रक्खे हुए हैं। स्टेज की बाई ओर दीवार से लगा हुआ एक ड्रेसिंग टेबिल है, जिस पर एक बडा ओवल (अडाकार) शीशा लगा हुआ है। इसके आस-पास प्रसाधन सामग्री सेंट, तेल, सोप पाउडर, फ़ेसक्रीम, हेयर क्रीम पोमेड आदि आदि के सुन्दर बर्तनो और शीशियो की खासी बहार है। इसी शीशे के सामने एक युवक खड़ा हुआ बालो को ब्रश कर रहा है। युवक की अवस्था ३० से ३५ के बीच मे रही होगी। इसका क़द कुछ लम्बा और शरीर इकहरा है। आँखों मे सुनहरे रिम का चश्मा है। बाल बहुत बड़े घने कुछ भूरे रग के और घूँघरदार हैं। वस्त्रो मे केवल एक नफीस चुनी हुई जरीदार नाखूनी किनारे की धोती और एक बहुत हलके

पीले रग का रेशमी कुर्ता पहने हुए है। ऊपर से बहुत झक धुली हुई सुनहरी धारियो की किनारीदार एक सफ़ेद चादर भी ओढ़े है। मालूम होता है, अभी अभी कपड़े पहने है और कहीं जाने की तैयारी मे है। जूता सलीमशाही गहरे लाल रग के मखमल का कामदार पहने है। शरीर कुछ कृश है, और आँखे धँसी हुई, पर बड़ी बड़ी और गम्भीर हैं। वे आधी मुँदी हुई-सी कुछ कुछ स्वप्न-राज्य मे विचरण करती हुई-सी जान पड़ती हैं। रग काफी गोरा है। चेहरे से एक आकर्षक नैराश्यपूर्ण गम्भीरता का भाव टपकता है। शाम होने में अभी कुछ देर है। वह ब्रश कर रहा है, इसी समय साधारण परन्तु खूब साफ़ धुली हुई खद्दर की धोती और कुर्ता पहने हुए एक दूसरा युवक दाहनी ओर से सिद्धिनाथ के पीछे से प्रवेश करता है। इस युवक का शरीर सुदृढ, रग साँवला और क़द मझोला है। आगन्तुक सिद्धिनाथ का मित्र है।]

सिद्धिनाथ—[शीशे मे मित्र की छाया देख, पलटकर सादर स्वागत करते हुए] आओ, कहो मित्र अच्छे तो हो। तुम भी चल रहे हो न ?

मित्र—चल रहे है! अजी वहाँ सब लोग पहुँच भी गये और जिसका सम्मान करने के लिए इतना बड़ा

आयोजन किया गया उसका पता भी नहीं! मैंने इस भय से कि कहीं तुम्हारा हार्ट तो नहीं फ़ेल हो गया, भागा भागा आ रहा हूँ।

सिद्धिनाथ—भाई, मुझे कुछ अजीब झेंप-सी लग रही है। मैंने साहित्य की कौन-सी ऐसी सेवा की है जो लोगो ने मुझे इस प्रकार सम्मानित करने का निश्चय कर डाला।

मित्र—अच्छा ख़ैर, आपने कुछ नहीं किया, और मेरी निजी राय तो यह है कि तुमने और कुछ नहीं सिर्फ़ भोले-भाले हिन्दी-भाषा-भाषी सम्प्रदाय की रुचि दूषित कर दी है और इसी के पुरस्कार-स्वरूप तुम्हारे 'आनर' में आज यह बृहद् कवि-सम्मेलन होने जा रहा है।

सिद्धिनाथ—बिलकुल ठीक कहते हो। नवीन युग में यदि कोई कलाकार यश-लाभ करना चाहे तो उसे सर्व-साधारण की रुचि को दूषित कर देने मे ही अपनी सारी शक्तियाँ निछावर कर देनी चाहिए।

मित्र—ठीक, अच्छा यह बताओ, अभी तुम्हे 'ड्रेस' और 'टायलेट' करने मे कितने घंटे और लगेंगे। 'फिनि-

शिग टचेज' अकेले मे देना चाहो तो मै जरा अन्तर्धान हो जाऊँ।

सिद्धिनाथ—जरा नहीं, बिलकुल हो जाओ। मै शर्माजी के मोटर के इन्तजार मे हूँ।

मित्र—[मुसकुराते हुए, कुछ व्यग्य से] अच्छा तो जनाब मोटर मे चलेगे [उठते हुए] तब मै चला, नमस्कार।

सिद्धिनाथ—और क्या? 'कविरत्न' हूँ या मजाक! तुम चलो, कह देना मै दस मिनट मे पहुँचता हूँ।

[मित्र हँसता हुआ बाहर चला जाता है। सिद्धिनाथ भी हँसता हुआ कुछ उत्तेजित-सा हो एक बार फिर कघी और ब्रश लेकर शीशे के सामने खड़ा होता है। परन्तु शीशे के सामने होते ही सहसा ठिठक कर रुक जाता है और बालो तक पहुँचा हुआ उसका कघी-वाला हाथ वहीं ज्यो का त्यो रुक जाता है। उसे शीशे मे पीछे की ओर से आई हुई एक युवती की छाया दिखाई पडती है। उस युवती की अवस्था २२ साल से अधिक नहीं कही जा सकती, पर चेहरे के पीलेपन और मुर्दनी से साफ जान पडता है कि अभी किसी लम्बी बीमारी से उठी है। उसका शरीर बहुत कृश और केश कुछ रूक्ष और निर्जीव-से जान पड़ते है। पर उसके नेत्रो मे विचित्र तेज तथा असाधारण ज्योति की एक लोकोत्तर आभा-सी फूट

कर निकलती हुई जान पड़ती है। उसका कद साधारण से कुछ अधिक लम्बा तो है ही, पर इस अत्यधिक कृशता के कारण उसकी लम्बाई कुछ बेडौल-सी भी मालूम होती है। सिद्धिनाथ बहुत धीरे-धीरे सिर पर से कघीवाला हाथ उतार कर उसे एक ओर रखता है और कुछ अवाक् और हतबुद्धि-सा घूमकर आगतुक की ओर होता है। इतने से ही काम मे उसे मानो सालो लग जाते है।]

सिद्धिनाथ—[मानो ज़बान खोलने मे उसे काफी तकलीफ हो रही है] तुम ? फिर कुछ प्रकृतिस्थ होकर और अपेक्षाकृत स्वाभाविक रीति से] एकाएक तुम किधर से ?

आगतुक—[अत्यन्त क्षीण स्वर से मानो बहुत दूर से आवाज़ आ रही है] चली आई।

सिद्धिनाथ—[मानो उसकी कमज़ोरी का ख़याल करके पास की कमानीदार कुर्सी की ओर बैठने का इशारा करते हुए] अच्छा बैठ तो जाओ !

आगतुक—नहीं, बैठूँगी नहीं, अब मै जा रही हूँ।

सिद्धिनाथ—यह क्या ? कैसे आई और कैसे चल दी ?

आगंतुक—बस, तुम्हे एक बार देखना था। देख चुकी, अब चली।

सिद्धिनाथ—इतने दिनो के बाद सिर्फ इसी लिए आई थी! छः बरस से कम न हुए होंगे।

आगतुक—जो हो, पर आई थी सिर्फ तुम्हे एक बार देखने के लिए ही।

सिद्धिनाथ—अच्छा देखने ही आई थी तो थोड़ा बैठो भी। कुछ देर देखो। क्या पल भर निगाह मिलाने से ही देखना खत्म हो जाता है?

आगतुक—तुम कहीं बाहर जाने को तैयार मालूम हो रहे हो। तुम्हे देर हो जायगी।

सिद्धिनाथ—होने दो। आज इतने दिनों के बाद तो तुम्हारी सूरत देखने को मिली, तिस पर भी इतनी उतावली।

आगतुक—तुम्हारे काम का हर्ज तो न होगा हमारे बैठने से?

सिद्धिनाथ—आज इतने दिनो के बाद आकर भी ये सब कैसी बाते कर रही हो मनोरमा?

मनोरमा—[मानो क्षण भर के लिए उसके चेहरे पर सुख की एक लहर दौड जाती है] फिर।

सिद्धिनाथ—क्या फिर?

मनोरमा—फिर बुलाओ मेरा नाम लेकर।

सिद्धिनाथ—अच्छा मै तुम्हारे नाम पर एक बहुत अच्छी कविता लिखूँगा, बैठो।

मनोरमा—नहीं, कविता अभी रहने दो। तुम सिर्फ़ हमारा नाम लेकर पुकारो।

सिद्धिनाथ—[सकौतुक कुछ क्षण उसकी ओर एकटक देखते हुए] अच्छा लो—मनोरमा—रमा रमा—

[मनोरमा के रक्तशून्य कपोलो पर मानो क्षण भर के लिए एक हलकी गुलाबी रगत दौड़ जाती है। किसी लोकोत्तर के आनन्द से पल भर के लिए उसके नेत्र अधरों पर मुस्कुराहट की एक क्षीण रेखा के साथ मुँद जाते हैं। फिर वह धीरे धीरे पास की कुशनदार कुर्सी पर बैठ जाती है। सिद्धिनाथ भी एक कुर्सी उसके पास खीच कर बैठ जाता है और एकटक मनोरमा के चेहरे के देखता रह जाता है। कुछ देर तक दोनों निस्तब्ध रहते हैं। मनोरमा धीरे धीरे ऑख खोलती है और सिद्धिनाथ के इस प्रकार निर्निमेष नेत्रो से अपनी ओर देखता पाकर कहती है]

मनोरमा—[कुछ दिलचस्पी के साथ] तुम क्यो मुझे इस तरह घूर रहे हो?

सिद्धिनाथ—[दूसरी ओर दृष्टि कर कुछ सोचने लगता है, फिर एकाएक] तुम ठहरी कहाँ हो?

मनोरमा—[मानो प्रश्न का अर्थ न समझकर] ठहरी कहाँ हूँ, और फिर ठहरूँगी ही कहाँ ?

सिद्धिनाथ—[कुछ हतप्रभ-सा होकर] अच्छा तो तुम शायद अभी सीधे यहीं चली आ रही हो ?

मनोरमा—यहाँ अर्थात् ?

सिद्धिनाथ—[कुछ रुक रुककर] यहाँ, यानी इलाहाबाद मे।

मनोरमा—हाँ, यहीं आ रही हूँ सीधे।

सिद्धिनाथ—सामान वग़ैरह कहाँ छोड़ा ?

मनोरमा—सामान मेरा कुछ नहीं है।

सिद्धिनाथ—बिलकुल कुछ नहीं ?

मनोरमा—नहीं, बिलकुल कुछ नहीं।

सिद्धिनाथ—[आश्चर्य से कुछ देर चुप रहने के बाद धीरे धीरे नीचे सिर किये हुए मानो अपने से ही कह रहा हो] आज छ. छ. बरस होने को आये, मगर इस बीच में कही कुछ खबर नही, एक चिट्ठी तक नही। यह वही मनोरमा है, जिससे परिचित हो मै सारे ससार को भूल गया था, रात रात भर, दिन दिन भर जिसकी एक एक बात सोचता रह जाता था। वही मनोरमा एकाएक आज मेरे सामने बैठी हुई है। साथ मे एक धोती तक नहीं ! आखिर इसका मतलब

क्या [धीरे धीरे सिर उठाकर मनोरमा की ओर देखता हुआ] किसी को साथ भी लाई हो या ऐसी ही ?

मनोरमा—ऐसी ही।

सिद्धिनाथ—इतना लम्बा सफर अकेले करने में तुम्हे कोई डर नही मालूम हुआ ?

मनोरमा—कुछ भी नहीं।

सिद्धिनाथ—तुम्हारा यहाँ का आना तुम्हारे घर के लोगों को मालूम है ?

मनोरमा—हाँ, सब जानते हैं।

सिद्धिनाथ—[कुछ सोचने के बाद] अच्छा, मगर तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारे पतिदेव को कुछ असुविधायें तो होगी ही।

मनोरमा—[अनमनी-सी] उहँ, होंगी शुरू मे कुछ दिनों तक फिर धीरे धीरे आप ही सब भूल जायँगे।

सिद्धिनाथ—[फिर कुछ देर तक दोनों हाथो पर सिर रख कर गम्भीर चिंता मे मग्न होने के बाद] अच्छा एक बात पूछूँ, बताओगी मनोरमा ?

मनोरमा—[ईषत् हास्य से] पूछो।

सिद्धिनाथ—क्या तुम हमारे साथ रहने की इच्छा से ही यहाँ आई हो ?

मनोरमा—[ईषत् हास्य] आई तो मै थी सिर्फ एक बार तुम्हे देख लेने भर के लिए, पर तुम चाहो तो रह भी जा सकती हूँ तुम्हारे साथ।

[सिद्धिनाथ कुछ क्षणों के लिए एक-दम सन्नाटे में आ जाता है। मनोरमा अर्थपूर्ण मुस्कुराहट के साथ कुछ देर तक उसकी ओर देखती रह जाती है और फिर धीरे धीरे कहती है]

मनोरमा—[एकाएक गभीर होकर] सिद्धिनाथ!

सिद्धिनाथ—[मानो नींद से चौंक कर] क्या कहती हो मनोरमा?

मनोरमा—तुम्हे उस दिन की बात याद है?

सिद्धिनाथ—कब की बात कह रही हो?

मनोरमा—वही उस रात की।

सिद्धिनाथ—[मुखमडल एकाएक आरक्त हो जाता है, नीचे देखने लगता है और फिर कुछ रुककर] अब उसकी याद क्यो दिला रही हो?

मनोरमा—उसका प्रयोजन है। तुमने उस रात को मुझे अपने पास रोक रखने का प्रबल आग्रह किया था। तुमने बड़ी विनती की थी। मै अपना हाथ छुडा-कर चली गई थी। चलते चलते मै वादा कर गई

थी, 'फिर आऊँगी'। उस वक्त मैं अपना वादा पूरा नही कर सकी थी। आज फिर आई हूँ।

[सिद्धिनाथ दोनों हथेलियो पर ठुड्डी का भार रक्खे हुए एकटक इस प्रकार मनोरमा की ओर देख रहा है, मानो उसके सामने साक्षात् महादेवी उतर आई हो। धीरे धीरे उसकी [सिद्धिनाथ की] आँखे आँसुओ से भर आती हैं। वह एकाएक उठकर पीछे की तरफ़ की खुली खिड़की के पास चला जाता है और मनोरमा की ओर पीठ करके चादर से आँसुओ को ख़ूब पोंछ डालता है। फिर धीरे धीरे आकर अपनी जगह बैठता है और बात का रुख बदलने के अभिप्राय से कहता है]

सिद्धिनाथ—तुम बहुत थक गई होगी मनोरमा, चलो कुछ पानी-वानी पी लो।

मनोरमा—नहीं, मुझे अब किसी चीज की जरूरत नहीं है।

सिद्धिनाथ—इतने लम्बे सफर से आई, और किसी चीज की जरूरत भी नही है। अच्छा यही लाता हूँ [उठने को होता है, मनोरमा हाथ से रोककर कहती है]

मनोरमा—बैठो, जल्दी क्या है? होता रहेगा।

सिद्धिनाथ—[बैठकर] तुमने आने से पहले एक कार्ड भी नहीं डाल दिया, नही तो—

मनोरमा—[एकाएक मानो कुछ स्मरण कर] लिखा तो था मैने ! क्या तुम्हे मिला नही ?

सिद्धिनाथ—नहीं तो, शायद किसी वजह से रुक गया हो, खैर, अब कार्ड क्या होगा ? अब तो तुम्ही आ गई हो। पर मनोरमा अब तुम्हे जाने न दूँगा। कई बार तुम आ आकर चली गई हो और तुम्हारे चले जाने पर मुझे मृत्यु से भी अधिक कष्ट सहना पड़ा है, पर अब नही।

मनोरमा—मृत्यु का कष्ट तुम्हे क्या मालूम ? सुनोगे वह कष्ट कैसा होता है ?

सिद्धिनाथ—जरूरत नही है, मुझे उसका काफी अनुभव हुआ है · कई बार हुआ है।

मनोरमा—नही, तुम नही समझ सकते। मृत्यु-यत्रणा क्या चीज है, मै बतलाती हूँ, सुनो।

सिद्धिनाथ—अच्छा कहो—

मनोरमा—मै. बहुत बीमार थी, यह तो तुम्हे मालूम ही है।

सिद्धिनाथ—यह तो तुम्हारी आकृति से ही स्पष्ट है। जान पडता है कि किसी असाध्य बीमारी से उठी हो।

मनोरमा—सुनो भी। जब मेरी बीमारी बहुत बढ गई तब डाक्टरो ने परामर्श से यह स्थिर किया कि लिवर का आपरेशन करना होगा। मुझे क्लोरोफार्म सुँघा-कर बेहोश किया। इसके बाद क्या-क्या हुआ, मुझे कुछ खबर नहीं। होश आने पर मालूम हुआ, अब मै अच्छी हूँ। पर इसके थोड़ी ही देर बाद एक अजीब तमाशा शुरू हुआ। धीरे-धीरे ऐसा मालूम हुआ मानो पैरो मे एक अजब तरह की ठड-सी लग रही है। थोड़ी हिलने-डुलने की कोशिश की तब जान पडा पैर अब हिल नही सकते। और फिर धीरे-धीरे वह ठड ऊपर की ओर बढती आ रही थी। अब घुटनो तक पहुँची और फिर कमर तक। मेरा आधा शरीर मानो लकडी का हो गया। इस बात को कई बार चिल्ला-चिल्लाकर कहा—कमरा लोगो से भरा हुआ था—पर मानो किसी ने सुना ही नही। हाथ से इशारा करने की इच्छा की, पर मालूम हुआ कि हाथ अब नही उठ सकते, उँगलियाँ भी नहीं हिल सकती। फिर वही ठड गले मे लगी। फिर कैसा मालूम हुआ, जानते हो? मरण-यातना किसे कहते हैं, वह तुम क्या समझोगे सिद्धिनाथ? वह मै समझती हूँ।

[धीरे-धीरे स्टेज पर की रोशनी कम होती जा रही है; सिद्धिनाथ मनोरमा की ओर शात भाव से एकटक देखता हुआ कहता है]

सिद्धिनाथ—यह तो तुम्हारे शरीर पर दृष्टि डालते ही स्पष्ट हो जाता है कि तुम मौत के मुँह से निकल कर आ रही हो। तुम्हारे शरीर में खून तो रही नहीं गया है। [उस गद्दीदार कुर्सी की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए] ऐसा जान पड़ता है मानो तुम्हारा वजन अब छटाँक भर भी नही रह गया। जिस कुर्सी पर तुम बैठी हो उसकी गद्दी ज़रा भी नीचे की ओर दबी हुई नही है, मानो तुम काठ की बेंच पर बैठी हो [कुछ रुककर और फिर एकाएक उठते हुए] खैर, अब अँधेरा हो चला। जरा उससे बत्ती रख देने के लिए कह आऊँ।

मनोरमा—[उठती हुई] अब मै भी चली, तुम्हारा काफ़ी समय नष्ट हुआ, तुम्हे बहुत देर हो गई। हो सका तो फिर मिलेंगे।

[खुले दरवाजे की ओर मुड़कर दो एक पग आगे बढती है। सिद्धिनाथ दृढ़ता से आगे बढ़कर उसका रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है और कहता है]

सिद्धिनाथ—[निर्निमेषरूप उसकी दृष्टि मे अपनी दृष्टि गड़ाये हुए] अब मै तुम्हे पल भर के लिए अपनी आँखो से ओझल नही होने दूँगा मनोरमा! देखूँ, तुम अब कैसे जाती हो।

मनोरमा—[तेजी से सिद्धिनाथ के बगल से होकर दरवाजे पर पहुँच कर] तुम मुझे रोक कर क्या करोगे सिद्धिनाथ? मैं तुम्हे एक बार सिर्फ देख चली।

[यह कहती हुई वह मानो एक स्वर्गीय दृष्टि से जिसमें आनन्द और करुणा के सिवा और कुछ नही है—सिद्धिनाथ को देखती हुई पीछे हटती है। सिद्धिनाथ लपक कर मानो अपनी दोनों भुजाओ के बीच उसे आबद्ध कर लेना चाहता है। पर उसकी भुजाये मानो शून्य को आलिंगन करती हैं और वह अपना बोझा न सँभाल कर वहीं धड़ाम से गिर पड़ता है]।

सिद्धिनाथ—[गिरते ही मानो मार्मिक यत्रणा से सतप्त हो चिल्ला पड़ता है] मनोरमा—रमा—रमा—

[ठीक इसी समय उसका वही साहित्यिक मित्र और उसके पीछे पीछे सिद्धिनाथ का नौकर हाथ में एक पोस्टकार्ड लिये हुए कमरे मे दाखिल होता है। नौकर एक १६ वर्ष का लड़का-सा है और साफ कपडे पहने है।

दोनो सिद्धिनाथ को इस अवस्था मे पाकर घबरा-से जाते हैं और कुछ देर तक किंकर्त्तव्य-विमूढ-से खड़े रह जाते हैं। फिर वह मित्र हाथ का सहारा देकर सिद्धिनाथ को उठाता है। सिद्धिनाथ मानो स्वप्नावस्था मे उठकर मित्र के सहारे चलकर सबसे पास की कुर्सी पर गिर-सा पड़ता है और दोनो हाथो से सिर ढॅक कर किसी गहरी चिंता में डूब जाता है।]

मित्र—कहो भई, हुआ क्या? अभी तो अच्छे थे। किसका नाम लेकर चिल्ला रहे थे? यह मनोरमा कौन है?

[सिद्धिनाथ धीरे धीरे सिर उठाकर एक बार शून्य दृष्टि से मित्र की ओर देखता है, पर तुरन्त ही फिर पूर्ववत् हो जाता है]

मित्र—वहाँ पहुँचते ही लोगो ने फिर दौड़ाया, कहा, साथ लेकर आओ, बडी देर हो रही है।

नौकर—साहब अभी अभी डाकिया यह खत डाल गया है।

सिद्धिनाथ—रख दो उधर [फिर मानो आप ही आप] मै जानता हूँ वह चिट्ठी। [फिर मित्र से] जरा पढकर सुनाओ तो।

मित्र—[चिट्ठी लेकर कुछ देर तक निश्शब्द पढने की कोशिश कर] अजीब खत है। सिर्फ एक लाइन

है—"मै बहुत बीमार हूँ—तुम्हे एक बार देखने की इच्छा होती है। अगर हो सके तो आओ—मनोरमा"—बस

सिद्धिनाथ—[शून्य दृष्टि से ऊपर की ओर देखते हुए] मै कहाँ आ सका मनोरमा ? इसके पहले तो तुम्हीं एक बार फिर आई थी।

मित्र—भाई, आखिर यह मामला क्या है ? मै कुछ समझ नहीं रहा हूँ।

सिद्धिनाथ—फिर कभी समझना।

मित्र—अच्छा तो चलो।

सिद्धिनाथ—चलो।

[दोनो धीरे धीरे उठते हैं, सिद्धिनाथ चित्र-लिखित-सा मित्र के साथ साथ उठकर उसके कंधे का मानो सहारा लिये हुए दरवाजे की ओर बढ़ता है। पर्दा गिरता है।]

—

प्रथम दृश्य

समय सायकाल ६ बजे

[नये, परन्तु सफल वकील रमेश बाबू के आफिस का कमरा। कमरे के दो ओर मोटी काली जिल्दोवाली प्रायः एक ही आकार की पुस्तकों से भरी हुई बडी-बड़ी आलमारियाँ लगी हुई हैं और सुनहले अक्षरो मे शायद पुस्तको के नाम लिखे हुए हैं। बीचोबीच एक बडा-सा सेक्रेटरियट टेबल रक्खा हुआ है, जिस पर एक मे बहुत-सी फाइले भरी पडी हैं। और भी बहुत-से कागज-पत्र प्रायः अस्त-व्यस्त रूप से उस पर पडे हैं। टेबल के एक ओर एक बडा-सा रिवाल्विग अलमेरा लगा हुआ है और उसमे भी रगबिरगी जिल्दोंवाली

मोटी-मोटी बृहद् आकार की बहुत-सी पुस्तके रक्खी हुई हैं। स्टेज के सामने टेबल के पीछे एक एडिटोरियल कुर्सी पर एक सज्जन बैठे है। इनकी अवस्था लगभग ३५ वर्ष, शरीर का आकार मॅझोला और रग काफी गोरा है। आप सफेद पैंट और हरा ब्लेजर कोट पहने हुए हैं। टेबल पर एक ओर एक टेनिस रैकेट रक्खा हुआ है। मालूम होता है, आप अभी-अभी टेनिस खेलकर लौटे हैं। शरीर भी आपका कुछ इस तरह का सुगठित और सुडौल-सा है, जिससे आप एक रियाजी खेलाड़ी जान पड़ते हैं। चेहरे का भाव यद्यपि कुछ अस्वाभाविक रूप से गम्भीर है, पर आपके भरे हुए और कुछ खिले से ओठ और मासल कपोल साफ बतलाते हैं कि आपमे अभी नवयुवकोचित रसिकता और मिठास का नितात अभाव नहीं हो पाया। ऑखे काफी धॅसी हुई और स्थिर होने पर भी आप कोरे दार्शनिक या वणिक् ही नही मालूम होते। उनके कोनो मे कभी-कभी एक सुश्री चचलता दौड़-कर शात हो जाती है, जिससे असाधारण प्रतिभा या निराश प्रेम, दोनो ही का सामजस्य-सा झलकता है। आपके बग़लवाली कुर्सी पर एक दूसरे नव-युवक सज्जन बैठे हैं। यह भी टेनिस की पोशाक मे

हैं, फ़र्क इतना ही है कि आपका ब्लेजर गहरे नीले रग का है, जिसका एकमात्र बटन खुला हुआ है। नीचे सफेद और गहरे लाल रग के बार्डरवाला एक पुल ओवर दिखाई पड रहा है, जिसका बेतुकापन साफ कह रहा है कि वह घर के और किसी नौसिखिये हाथ की करामात है। इनका शरीर तो लॉबा और दुबला है, पर कलाई काफी चौड़ी है। इनके बैठे गाल, धॅसी ऑखे और निस्तेज रग एक ही कहानी कहते हैं—या तो यह कोई कम-से-कम पॉच सेट सिंगल्स खेलनेवाले व्यवसायी खिलाडी हैं या कोई 'क्रानिक केस' [दीर्घ-रोगी]। फिलहाल आप अपने हाथवाले रैकेट की तॉत की बडे गौर से परीक्षा-सी कर रहे हैं। यह रमेश बाबू के बाल्य बधु रामेश्वरसिंह हैं।]

रामेश्वरसिंह—[बल्ले की गटों को सुरमण्डल बाजे की तरह छेड़कर एक विचित्र झंकार-सी पैदा करते हुए] ॲगरेजी गटो मे एक ख़ास खराबी यह होती है कि ये इण्डियन कण्डिशस को सूट नहीं करते।

रमेशचन्द्र—बात यह है कि आप लोग ॲगरेजी गट [तॉत] का इस्तेमाल और उसकी हिफाज़त नहीं जानते। लास्ट इयर मैं सीजन भर ॲगरेजी गट से

खेला [अपने बल्ले की गट को दबाकर बजाते हुए] और अभी तक ठीक हालत में है।

रामेश्वरसिंह—हो सकता है, मगर आप खेलते ही कितना हैं। किसी दिन कोई आया और वकालत की नजीरो और मिसलो मे से हजरत को निकालकर क्लब तक घसीट ले गया तब तो आपके बल्ले को प्रेस में से निकलने की नौबत आती है। कहाँ तो कुछ बरस पहले यह हाल था कि ढाई बजते-न-बजते हुजूर नेट पर हाजिर हो जाते थे। मार्कर भी अक्सर तब तक नही पहुँच पाता था। कभी-कभी तो माली खाना-वाना खाकर एक चिलम तम्बाकू भी नही पीता था कि तुम्हारी डॉट पड जाती थी—बदमाश ने अभी तक नेट [जाल] नहीं खडा किया।

रमेशचन्द्र—[उदासी-मिश्रित गम्भीरता से] वे दिन और थे।

रामेश्वरसिंह—[ईषत् हास्य के साथ] आज-कल के इस युग मे अतीत स्त्री-प्रेम ने किसी के जीवन पर अगर स्थायी प्रभाव डाला है तो वह तुम हो।

रमेशचन्द्र—[कुछ बनावटी रोष से] बिलकुल नही, तुम लोग झूठ-मूठ मुझे बदनाम करते हो। आज ६-६ बरस होने को आये, किसी ने उर्मिला का नाम

भी मेरे मुँह से सुना है या अपना काम छोड़कर किसी की याद मे स्वप्न-राज्य मे विचरण करते ही देखा है ?

रामेश्वरसिह—[कुछ देर गौर से रमेशचन्द्र के मुख का भाव परखकर अति गम्भीर भाव से] हमने माना कि जब से उर्मिला की शादी हुई और उसने इस बेवफाई से तुम्हारे सपूर्ण प्रेम को ठुकराकर उस ग्रेजुएट जर्मीदार को स्वीकार किया, तब से तुमने कभी उसका नाम भी नहीं लिया; उसकी चिट्ठियो का कभी जवाब भी नहीं दिया और न उससे मिलना ही कभी पसंद किया। हालाँ कि यह सभी जानते हैं कि उसने तुमसे एक बार फिर मिलने की चेष्टा मे कोई बात उठा नहीं रक्खी और बराबर चिट्ठियाँ भेजती गई,—मगर—

रमेशचन्द्र—मगर क्या ? शुरू मे तो मैने दो-एक चिट्ठियाँ उसकी पढ़ी भी थीं, फिर तो बिना पढ़े ही जला दिया करता था।

रामेश्वरसिह—मुझे सब मालूम है। उन दो-एक चिट्ठियो को तुमने मुझे भी पढकर सुनाया था, और मेरे हज़ार मना करने पर भी तुमने कई चिट्ठियाँ मेरे सामने जलाई—मगर—

रमेशचन्द्र—[अर्थपूर्ण दृष्टि से रामेश्वरसिंह का भाव टटोलते हुए] फिर वही मगर; आखिर तुम्हारा मतलब क्या है ?

रामेश्वरसिंह—[लापरवाही से] मतलब-वतलब कुछ नहीं, चकमा किसी और को देना। [यकायक बहुत गंभीर होकर] तुम ज्यादा-से-ज्यादा यह कह सकते हो कि उससे अब घृणा करते हो—अपने शरीर के रक्त की प्रत्येक बूँद से जैसे उसे कभी प्यार किया था, वैसे ही अब घृणा करते हो। बस, अगर तुम यह कहना चाहते हो कि तुम उसे भूल गये या अपनेपन से तुमने उसे एकदम अलग कर दिया तो मै तुमको एक बहुत बड़ा हिपोक्रिट [बनने-वाला] कहूँगा। तुम्हारे प्रत्येक रोम पर अब भी उसका वैसा ही अधिकार है—यद्यपि इस अधिकार की क्रिया अब दूसरे रूप में हो रही है। तुम्हारा एक-एक दिन का प्रत्येक कार्य अब भी उससे प्रभावित है—पहले की अपेक्षा कही अधिक वेग से प्रभावित है, सिर्फ उसका पहलू बदल गया है।

रमेशचन्द्र—[एक अत्यन्त करुण और म्लान मुस्कुराहट के साथ] रामेश्वर, जरा अपने को और तो स्पष्ट

करो। शायद तुम मानव-हृदय के एक कोमलतम तार को छोड़ने की चेष्टा करने जा रहे हो।

रामेश्वरसिंह—[उसी भाव से] अधिक स्पष्ट करना व्यर्थ है। मेरा मतलब तुम खूब समझ गये हो। तो भी इतना याद रक्खो [रामेश्वर के खोखले गाल यकायक कुछ तमतमा-से उठते हैं और आँखें दीप्त-सी हो उठती हैं] वास्तविक प्रेम कभी मिटता नहीं, चाहे उसका पात्र या पात्री जघन्य-से-जघन्य आचरण क्यो न करे। सिर्फ एक प्रकार का पट-परिवर्तन-मात्र हो जाता है। पट के दोनो ही ओर जीवन की सामग्री है और दोनों ही का दर्जा बराबर का है। फर्क इतना ही है कि एक ओर अगर प्रेम के दृश्य या करिश्मे हैं, तो दूसरी ओर घृणा के। एक तरफ अगर प्रेम है, तो दूसरी ओर घृणा। पहला जितना चित्र-विचित्र और गहरा होता है, दूसरे को भी ठीक वैसा ही होना पडेगा। यह असम्भव है कि रोशनी पडने पर रंगीन परदे का एक पार्श्व चित्रित और दूसरा बिलकुल कोरा दिखलाई पडे। दूसरे शब्दों में, यह असम्भव है कि जिसे सचमुच प्यार कर चुके हों, उसके प्रति किसी भी परिस्थिति में एकदम निर्विकार या निर्लिप्त हो जायं। और, यदि ऐसा हो जाय तो

उसका अर्थ यह होगा कि वह सचमुच प्यार या प्रेम नही था; कोई और ही चीज रही होगी, आप मुफ़्त मे प्रेम का नाम बदनाम कर रहे हैं।

रमेशचन्द्र—[विस्फारित नेत्रो से अपने मित्र की ओर एकटक देखते हुए, पर एक साथ ही कुछ उपहास के साथ] शाबास! यह तो तुम प्रेम की एक अच्छी खासी फिलासफी बघार गये। मगर तुम्हारे तर्को मे सिर्फ़ एक कमजोर कडी है। तुम्हारी बाते ठीक हैं, पर ऐसा तभी होता है, जब दोनो ओर से तल्लीनता की मात्रा किसी समय समान रही हो। पर मुझे हुआ धोका, मै सोते से चौकाया गया। मुझे बेवकूफ बनाया गया था, और सो भी बड़ी बेरहमी के साथ।

रामेश्वरसिह—[दृढ़ता से] नही, तल्लीनता या अनुराग जिसे कहते हैं, वह यकतरफा हो ही नहीं सकता। तुम्हे धोका दिया समाज ने, या परिस्थितियो ने, या मनुष्यता ने। चाहे किसी ने दिया हो, पर उसने नही। अगर जिंदा रहे तो कभी इसका सबूत पा लोगे।

रमेशचन्द्र—[उठते हुए, बनावटी आश्चर्य के भाव के साथ] ओफ ओह! रोमास का इतना पका-पकाया अनुभव! हो पुराने खिलाड़ी [यकायक कुछ गम्भीर

होकर] मगर इतना हमसे भी सुन लो। अगर प्रेम मे इन चीजो का—जिनका नाम तुम अभी गिना गये हो, यानी समाज, परिस्थितियाँ और मनुष्यता का—बाँध तोड़ने की शक्ति नही, तो वह प्रेम नहीं, छल है। खैर, देखा जायगा।

रामेश्वरसिह—अब यहाँ से दूसरा सवाल पैदा हो जाता है। मगर मै अपनी पहली बात पर अड़ा रहूँगा और ज़िन्दा रहा तो कभी दिखला दूँगा कि मै सही था। खैर, अब यह बहस छोडो। जा कहाँ रहे हो? आज तो क्लब से सीधे सिनेमा चलने की ठहरी थी न? तुमने कहा था, ज़रा घर हो लें फिर चलेंगे, भूल गये [मुसकराता हुआ] इतनी जल्दी?

रमेशचन्द्र—[भूल स्वीकारवाली मुस्कुराहट के साथ] अरे हाँ! अच्छा तुम जरा मुहम्मदहुसेन को गाड़ी लेकर बरसाती मे आने को कहो; मै इसी बीच मे जरा चेज किये [कपडे बदले] लेता हूँ।

रामेश्वरसिह—ये लो, इतने एब्सेंट माइडेड [भुलक्कड़]। अरे क्लब से आकर तुम्हीं ने न उसे बरसाती मे रुकवाकर कहा था 'जाना मत अभी बायस्कोप चलना है' और भूल गये!

रमेशचन्द्र—[असमंजस के साथ मुसकराकर] सच ? अच्छा तो बैठो अभी आया। [रमेश का बगल के कमरे मे सवेग प्रस्थान]

रामेश्वरसिंह—[जाते हुए रमेश को लक्ष्य करके कुछ झुँझलाहट से गर्दन नीची करते हुए दार्शनिकों-वाली एकांगी मुस्कुराहट के साथ] हुँः ! दावा तो यह कि उसे मन से निकाल दिया, पर हालत यह।

परदा

द्वितीय दृश्य

[समय प्रातः ६ बजे]

[रमेश बाबू अपने उसी आफिसवाले कमरे मे मिसलो, क़ानूनी किताबो और कचहरी के कागजात के बीच में बैठे हुए एकाग्रचित्त से कोई टाइप किया हुआ पुलिंदा पढ़ रहे हैं और मोटी लाल पेंसिल से कहीं-कहीं निशान या लकीर खींचते जा रहे हैं। स्टेज के दाहिनी ओर-वाले दरवाजे से नाक की नोक पर ऐनक लगाये हुए एक कुबड़ा मुन्शी बीच-बीच मे कुछ कागजात और रख जाता है। इसी समय एक वृद्ध कमरे मे प्रवेश करते हैं। आपकी उमर साठ से कम न होगी। पहनावे से पुराने ढंग के रईसो के गुमाश्ते मालूम होते हैं। एक रुईदार

चुस्त पाजामा काले रंग का और उसी की अचकन, सिर पर एक सफेद पगडी और हाथ मे एक छड़ी। मगर शरीर की अकड अब भी जवानो की तरह है और चाल भी दृढ गभीर। यो तो 'क्लीन शेव' यानी दाढ़ी मूछ नदारद हैं, पर चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही स्पष्ट हो जाता है कि कई दिन से हजामत नही बनी। कुछ गंभीर चिंता तथा आशंका के भाव भी साफ हैं। कमरे मे आते ही जिस भाव से आप बैठकर जल्दी-जल्दी जेब से कुछ कॉपते हाथो से एक खत ढूँढ निकालते हैं उससे आप काफी अस्तव्यस्त और परेशान मालूम होते हैं। वकील साहब काम मे इस बेतुके विघ्न का मानो कुछ अर्थ न समझकर एक आश्चर्य की दृष्टि से, पर शातभाव से वृद्ध की सब हरकते देखते जा रहे हैं। स्पष्ट है कि रमेश बाबू के आफिस रूम मे यह अपने ढंग का शायद प्रथम दृश्य है और वह अभी इसका अर्थ ही नही समझ रहे हैं।]

रमेशचन्द्र—[वृद्ध को इस परेशानी के साथ दोनों जेबो मे खत टटोलते देखकर कुछ कठोर मुद्रा के साथ]

आपको दरवाजे पर कोई आदमी नहीं मिला?

वृद्ध—[पहले मानों सुना ही नहीं, पर इसी बीच जेब मे खत पाकर, उसे दाहिने हाथ में लेकर और यह देख कि यह वही खत है जिसे वह खोज रहे थे, कुछ

प्रकृतिस्थ होकर कुछ क्षमा-याचना के भाव से] माफ कीजिएगा, आपके मुन्शीजी ने पहले ही मेरा कार्ड माँगा था, पर मैं इतनी जल्दी मे था कि इतनी देर भी बर्दाश्त नहीं थी। खैर, जरा यह खत तो देखिए।

रमेशचन्द्र—[एक अत्यत क्रूर और हृदयहीन उदासीनता के भाव से उनकी ओर देख लापरवाही से खत को हाथ में लेते हुए] खैर आप हैं कौन और कहाँ से तशरीफ लाये हैं?

वृद्ध—[जरा आश्चर्य से] मै—मुझे लोग शिवराम दुबे कहते हैं। अधिकतर लोग 'दुबेजी' कहकर ही पुकारते हैं। मै यहाँ के जमींदार बाबू भगवानदासजी का, जो यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर भी हैं, गुमाश्ता हूँ। खैर, यह चिट्ठी तो पढ़िए, उसी से आपको सब मालूम हो जायगा।

रमेशचन्द्र—[मानों वृद्ध की बेहूदगी को लाइलाज मानकर ओठ के एक कोने को टेढ़ाकर नैराश्य के भाव से सिर हिलाते हुए लिफाफा खोलते हैं और एक दृष्टि में ही पूरा खत पढ़कर वृद्ध के आगे फेककर] आप ग़लत जगह आये हैं, खत मेरा नहीं है।

दुबेजी—[मानों आकाश से गिरकर कुछ देर आँखे फाड़-फाड़कर उनकी ओर देख लेने के बाद]

ऐसा भला कैसे हो सकता है ? आप ही न बाबू रमेशचन्द्र—

रमेशचन्द्र—हाँ मेरा नाम जरूर यही है, पर मेरा ख़याल है कि आपको इसी नाम के किसी डाक्टर के पास भेजा गया है । मैं वकील हूँ ।

दुबेजी—[ज़रा सकपकाकर] जी, मैं वकील रमेशचन्द्र के पास ही भेजा गया हूँ और ठीक जगह ही आया हूँ ।

रमेशचन्द्र—[एक उपेक्षा की मुस्कुराहट के साथ कंधे उचकाते हुए] आप मेरे पास ख़ुशी से आइए पर साथ मे मुकद्दमे के ज़रूरी काग़ज़ात लाना कभी मत भूलिएगा । हो सका तो मुकदमा जिता दूँगा ।

दुबेजी—[कुछ अवाक् से] आपने—क्या—अच्छा इस चिट्ठी को पढ़कर आपने क्या समझा ?

रमेशचन्द्र—[फिर एकाग्रचित्त से सामनेवाला कागज देखने लग जाते हैं और पेंसिल हाथ मे लेकर मार्क करने लगते हैं । कुछ क्षण इसी अवस्था में रहते हुए] चिट्ठी से मैंने यही समझा कि कोई प्रोफ़ेसर भगवान बाबू हैं और उन्होने मुझे बुला भेजा है, इसलिए कि उनकी बीबी की हालत खराब है । [यकायक सिर ऊपर उठाकर] अगर उनकी बीबी को कोई 'विल' या दानपत्र वगैरह बनवाना हो तो वैसा

कहिए, मै चलने को तैयार हूँ। नहीं तो मैं आपको किसी डाक्टर के यहाँ जाने की सलाह दूँगा।

दुबेजी—[जिनकी मुद्रा क्रमशः कठोर होती जाती है और चेहरे पर आश्चर्यमिश्रित घृणा के भाव स्पष्ट से स्पष्टतर होते जाते हैं] माफ कीजिएगा। यह मैंने आज समझा कि 'वकील' और 'मनुष्य' दोनो भिन्न-भिन्न प्राणी हैं। पर इतना आपसे भी कहूँगा कि बहूजी कल रात से ही प्रलाप मे आपका नाम बारबार ले रही है और सबसे कह रही है, रमेश बाबू वकील को एक बार बुला दो। उनसे एक बार माफी माँगना है . वग़ैरह-वगैरह। पूछने पर आपका पूरा नाम और यही पता बताया; क्योकि उनके सिवा और कोई वहाँ आपको जानता भी नहीं। आज चार-पाँच दिन से प्रलाप मे बराबर आप ही का नाम उनकी जबान पर है। पहले तो बाबू ने इस पर कुछ विशेष ध्यान नही दिया, पर कल रात को उन्होंने आपके लिए बहुत ज़िद की [रमेशचन्द्र धीरे-धीरे हाथ की पेंसिल एक ओर रख वृद्ध की बातो मे कुछ वास्तविक दिलचस्पी-सी लेने लगते है]। बाबू ने इस पर ज़रा ज़ोर देकर पूछा कि 'अच्छा तुम्हारे रमेश बाबू हैं कौन, क्यों उन्हे इस वक्त इतना याद कर रही हो,

वह तुम्हारे कोई रिश्तेदार या क्या है, आदि-आदि।' इन प्रश्नो पर यकायक बहूजी को मानो होश आ गया। वह यह कहती हुई उठ बैठी कि 'वही तो हमारे सब कुछ हैं। जानना चाहते हो वह हमारे कौन हैं? अच्छा सुनो'...इस पर बाबू ने इशारे से हम लोगो को कमरे से बाहर चले जाने को कहा और फिर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। उनका चेहरा उस वक्त जाने कैसा अजीब-सा हो रहा था। सुबह होते ही उन्होंने मुझे बुलाकर यह खत देकर भेजा और कहा कि आपको जैसे हो, फ़ौरन साथ लेकर आना। वह उस समय कुछ अस्वाभाविक रूप से शांत और गंभीर हो रहे थे।

रमेशचन्द्र—[जिनके चेहरे पर क्रमशः उत्कंठा और दिलचस्पी के भाव बढते ही जा रहे थे] ठीक है। अच्छा, एक बात और आप अपने इन बाबू साहब की बीबी का नाम बता सकते हैं?

दुबेजी—[उसी झोक मे] क्यों नहीं, उनका नाम है उर्मिलादेवी और वह बी० ए० तक पढ़ी भी हैं। और—

रमेशचन्द्र—[हाथ के इशारे से मनाकर, चेहरे पर मानों विजयलाभ का एक गम्भीर सतोष का-सा भाव

लाते हुए, धीरे से दराज में से 'फ़्यावन ए' सिगरेट का एक लाल रग के टीन का चौड़ा डिब्बा निकालकर इतमीनान से एक सिगरेट जलाते हैं। दियासलाई का 'स्टैंड' उनके चाँदी के क़लमदान में ही एक ओर स्थायी रूप से जड़ा हुआ है। दो-एक कश पीने के बाद छल्लेनुमा धुआँ कमरे की छत की ओर उड़ाते हुए और गौर से उसी की ओर देखते हुए। दुबेजी आश्चर्यचकित से उनकी ओर एकटक देखते रह जाते हैं] अच्छा तो यह बात है [मुसकुराकर एकाएक भाव बदलते हुए]! पर जनाब, मै कोई पेशेवर मातमपुर्सी करनेवाला तो हूँ नही, जो चलके रोने-धोने में शरीक हो सकूँ। फिर लोगों को तसल्ली वगैरह देना या ज्ञान का उपदेश, ओ—फ़! यह मेरे सात पुश्त से भी न हो सकेगा। फिर मै चलकर करूँगा ही क्या? हाँ, आपको भ्रम हो सकता है। बल्कि मेरी मोटर लीजिए और मेहरबानी करके एक बार देख आइए—पूछ आइए कि दर असल वकील की जरूरत है या डाक्टर की। तब जैसा होगा, वैसा किया जायगा।

दुबेजी—[आश्चर्य का भाव दृढ़ता से घृणा में परिवर्तित करते हुए] बस, अब हद हो गई। मुझे ज़्यादा

समय भी नहीं है [उठते हुए] कह दूँगा फीस मिलने का निश्चय न होने के कारण आप आने में असमर्थ हैं।

रमेशचन्द्र—[वृद्ध की बातें अनसुनी करके फिर से अपने कागज़ात पर ध्यान लगाते हैं और सिगरेट खींचते हुए कुछ अमानुषिक रूप से मुसकुराते हुए कहते हैं] बड़ी कृपा। पर अपने मालिक से इतना कहने के साथ ही यह भी कह दीजिएगा कि [घृणामिश्रित गम्भीरता से] "जिस व्यक्ति ने इस चरम अवस्था के आ पहुँचने पर एक बार मुझसे मिलना ज़रूरी समझा और अपने पति-द्वारा ही मुझे प्रकटरूप से बुलवाया, उसका ज़िक्र तक इस खत में करना आपने न-जाने क्यो मुनासिब नहीं समझा।" आपके मालिक ने अपनी व्यक्तिगत हैसियत से ही मुझे बुलवाया है। उर्मिलादेवी ने मुझसे मिलना चाहा है, यह लिखना उन्होंने मुनासिब नहीं समझा। उर्मिलादेवी उनकी स्त्री हैं। इसके माने यह नहीं हैं कि हमेशा के लिए उसने अपना अस्तित्व ही भगवान् बाबू में मिला दिया है। पर आपके बाबू साहब शायद ऐसा ही समझते हैं। यह उनकी भयानक भूल है। [वृद्ध विस्फारित नेत्रों से यह सब

सुन लेता है और फिर आश्चर्य में डूबा हुआ-सा बाहर निकल जाता है; वकील साहब एकाएक बहुत व्यस्तरूप से मिसलें देखने में लग जाते हैं, पर तुरन्त ही मुसकुराता हुआ उनका दीर्घकाय मित्र रामेश्वरसिंह कमरे में प्रवेश करता है और यह कहता हुआ कुर्सी पर बैठ जाता है]

रामेश्वरसिंह—आखिर हमारी बात सही निकली न ?

रमेशचन्द्र—क्या तुम बाहर खडे सब सुन रहे थे ?

रामेश्वरसिंह—उँह, इससे क्या, अब मान जाओ कि मैं ठीक कह रहा था।

रमेशचन्द्र—यह तो तुम उलटी बात मनवाना चाह रहे हो। माना कि चलते वक्त उन्होंने एक बार मुझे याद फ़र्माया है, पर मैं गया तो नहीं। हाँ मैं जाऊँगा उसके पास, पर जब पक्की खबर मिल जायगी कि वह मर गई तब।

रामेश्वरसिंह—इम्पासिबुल् [गैरमुमकिन]। इस हालत में बुलाये जाने पर जब हज़रत गये नहीं तो मरने पर कौन तुरत ख़बर लेकर दौडा आवेगा ? और फिर जाकर करोगे ही क्या ?

रमेशचन्द्र—तुम इन बातों को नहीं समझ सकते। उसे यह तो अब मालूम ही हो जायगा कि इस अवस्था

में बुलाये जाने पर भी मैं नहीं आया। और यदि इसी भावना को लिये हुए ही वह मर गई तो मेरी विजय पूरी होगी। अपनी अंतिम साँस तोड़ते समय उसे मालूम होगा कि एक पुरुष के सच्चे प्रेम के निरादर की प्रतिक्रिया कितनी निदारुण हो सकती है। पर फर्ज करो कि मैं गया और दैवयोग से वह आगे चलकर अच्छी हो गई तो वह अपनी शक्ति के घमड से फूली नहीं समायगी। [कुछ देर सोचकर] अच्छा, मै एक काम करता हूँ, अभी मोटर लेकर उसके घर की ओर चलता हूँ। गली के मोड़ पर ही मोटर रुकवाकर ड्राइवर को भेजकर खबर मँगवाऊँगा कि वह जीती है या मर गई। फिर अगर मरने की खबर पाऊँगा तो एक बार जाऊँगा, और नहीं तो वापस आऊँगा। तुम भी साथ चलो।

रामेश्वरसिह—[अर्थपूर्ण मुस्कुराहट के साथ] चलो, हमारी मोटर बाहर तैयार खड़ी है। [दोनों बाहर निकलते हैं]

तीसरा दृश्य

[सड़क। एक पतली गली, दोनो ओर ऊँचे-ऊँचे मकान हैं, कुछ लोग काम से आ-जा रहे हैं, एक मोड़

के पास रमेशचन्द्र और रामेश्वरसिंह, खडे बाते कर रहे हैं]

रमेशचन्द्र—[अत्यत उत्तेजित और उद्विग्नता के भाव से] ड्राइवर अभी तक खबर लेकर लौटा नही, शायद जीती है, चलो लौट चलें, ड्राइव खुद करेंगे, वह आता रहेगा।

रामेश्वरसिंह—[मानो स्वप्न देख रहा है, उसकी बातो से चौंककर, पर दार्शनिको की भॉति मुसकुराता हुआ] क्यों, अब हिम्मत जवाब दे रही है क्या? अच्छा, उसे आ तो जाने दो, मरने के बाद तुम्हें वहॉ जाना है न?

रमेशचन्द्र—[अत्यन्त उत्तेजित हो] मगर जब वह इतनी मरणासन्न है तो यों भी जाने पर क्या वह पहचानेगी? [उसको घसीटता हुआ] अच्छा चलो, ज़रा मकान के क़रीब तक तो पहुँचे रहे।

रामेश्वरसिंह—अच्छा, चलता हूँ; मगर अब तुम्हे ले ही चलूँगा। अगर ईश्वर की कृपा से वह जीती निकली तो जन्म भर अपना भाग्य सराहना और मुझे दुआ करना।

रमेशचन्द्र—[रुँधे गले और छलछलाई ऑखों से] क्या कहते हो रामेश्वर? मुझे कमजोर समझते हो?

[इधर हाँफता हुआ और बहुत घबराया हुआ ड्राइवर पहुँचता है। रामेश्वर गूढ दृष्टि से उसके भीतर का भाव जानने की चेष्टा करता है, पर रमेशचन्द्र एकबारगी उस पर टूट-सा पड़ता है और दोनों हाथों से भरजोर उसके दोनो कधो को झकझोरता हुआ अस्फुट स्वर से काँपते हुए और अत्यत उद्विग्न स्वर से जल्दी-जल्दी कहने लगता है]

रमेशचन्द्र—जीती है न ? [ड्राइवर स्तभित और चुप है]

रमेशचन्द्र—[और भी घबराकर और ज़रा क्रोध मे] जल्दी बताता क्यो नहीं, क्या देखकर—

ड्राइवर—[डरते-डरते] साहब वहाँ तो रोना-पीटना हो रहा है। एक डाक्टर साहब अभी सार्टिफिकेट लिखकर गये हैं।

[रमेशचन्द्र वज्राहत-सा स्तब्ध होकर रह जाता है। इधर रामेश्वर की आँखे धीरे-धीरे शरदकालीन सरोवर की भाँति भर आती हैं और वह लड़खड़ाते हुए रमेशचन्द्र को एकाएक पकड़कर अपने विशाल वक्षःस्थल से चिपका लेता है। दोनो अस्फुट स्वर से रो पड़ते हैं]

रामेश्वर—[ईषद् जुगुप्सामिश्रित सहानुभूति के साथ] अब जाओ न—मरने के बाद—जैसी हाँक रहे थे।

रमेशचन्द्र--[कुछ भी बोलने मे असमर्थ, पर मानो बड़ी चेष्टा से] बस, चुप रहो। ड्राइवर, मोटर लाओ।

[रामेश्वर रमेश को मानो गोद मे लिये हुए-सा अश्रुपूर्ण आँखों से आगे बढता है और ड्राइवर पहले ही खिसक जाता है, धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

शर्माजी

नाटक के पात्र

श्रीराम शर्म्मा—एक साहित्य-सेवी डिप्टी कलेक्टर।

उमा—उनकी स्त्री।

डाक्टर अस्थाना—एक नये डाक्टर, शर्मा जी के बाल्यबन्धु और सहपाठी।

तारा—इनकी स्त्री।

मनोहर—शर्मा जी का चपरासी।

प्रथम दृश्य

[रात के करीब नौ बजे होंगे। डिप्टी साहब दौरे से लौटे हैं। कपड़े बदल कर अपनी स्टडी में बैठे हैं। कमरा अँगरेजी ढङ्ग पर सजा हुआ है। शर्माजी अभी अभी कमरे मे आये हैं। देखने से उम्र कोई ३० साल की मालूम होती है। रग गेहूँआ, शरीर इकहरा और गठन से ख़ूब कसरती और खिलाडी मालूम होते हैं। तो भी उनके मुर्दनी छाये हुए चेहरे और मथरगति से यह स्पष्ट है कि या तो ये बहुत थके हुए हैं या कोई मानसिक वेदना से इनका यही हाल रहता है।]

[कमरे मे बाईं ओर से २०-२२ वर्ष की एक स्त्री आती है। ये डिप्टी साहब की पत्नी उमा हैं। इनका रंग

हलका साँवला और कद ठिगना है। आँखे छोटी और मुँह ज़रा ज़्यादा चौड़ा है। एक सफेद धुली हुई साड़ी पहने हैं और देखने से कुछ बेवकूफ-सी पर साथ ही क्रोधी मिजाज़ की मालूम होती हैं। इनको सुन्दरी या कुरूपा दोनों ही कहना कठिन है। चाल में घमंड और बनावट काफी है। शर्माजी ने इन्हे देखकर एक अर्थ-शून्य मुस्कुराहट के साथ बराबरवाली आराम-कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। ठीक इसी समय टेलीफोन की घंटी बज उठती है।]

शर्माजी—मनोहर—

[मनोहर कचहरिये चपरासियो की वर्दी में है]

मनोहर [निःशब्द रूप से नगे पॉव कमरे मे घुसते हुए]—
हुज़ूर।

शर्माजी—देखो, कौन है।

उमा—[जल्दी से] बाप रे बाप! कमरा मे आते देरी नहीं हुआ कि लोग दउडने लगे।

[डिप्टी साहब के नथने और नेत्र कुछ कुछ विस्फारित हो उठते हैं, जिससे मालूम होता है कि ऐसे अवसरों पर वे इससे अधिक कुछ करना व्यर्थ समझते हैं और साथ ही क्षण भर के लिए देवी जी के सर्वाङ्ग पर विद्युत्-

वेग से दृष्टिपात कर फिर प्रश्नसूचक दृष्टि से मनोहर की ओर देखने लगते है]

मनोहर –[बोलनेवाले से दो एक प्रश्नोत्तर करने के बाद] बोलनेवाला आपको ही बुला रहा है।

शर्माजी—कह दो, अभी नहीं आ सकते।

मनोहर—कहा तो था, पर कहता है कि बड़ा जरूरी काम है।

शर्माजी—अजीब आफत है। अरे बाबा कह दो तबीअत खराब है।

[मनोहर यंत्र उठाकर फिर कुछ बोलता है, इधर उमाजी विस्फारित नेत्रों से टेलीफोन और चपरासी की ओर इस प्रकार देख रही थीं, मानों पृथ्वी-तल पर कोई अष्टम आश्चर्य देख रही हो। साथ ही चित्रपट के दृश्य की भाँति उनका यह भाव झुँझलाहट में बदल जाता है और वे एकाएक बोल उठती हैं]

उमा—ए राम ए राम ! थोड़ा आराम में भी आफत है। चलिए खाना खा लीजिए। फिर देखिएगा। पूड़ी और आलू का तरकारी बना है।

[शर्माजी अनसुनी करके, मानो श्रीमतीजी की पूर्बी बोली पर और साथ ही अपने भाग्य पर कुछ क्षणो के

लिए किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो जाते हैं और फिर मनोहर से धीरे-धीरे पूछते हैं]

शर्माजी—कहो भई क्या हुआ ?

मनोहर—हुजूर, अपना नाम नहीं बतलाता, लखनऊ स्टेशन से बोलता है। कहता है, गाड़ी छूटने में सिर्फ १५ मिनट की देर है, और इसी बीच आपसे कुछ बातें कर लेना जरूरी है। आवाज किसी औरत की मालूम होती है।

उमा—बाप रे बाप! इतने रात को औरत बोलता है, टेसन पर से। कैसी औरत है!

[शर्माजी कुछ क्रोध-सूचक दृष्टि से श्रीमती जी की ओर देखते हुए धीरे-धीरे टेलीफोन की ओर बढते हैं और उनकी ओर देखकर कहते हैं।]

शर्माजी—अब आप जाकर खाने-पीने का इन्तजाम करिए। मै अभी दो मिनट मे आता हूँ।

[श्रीमती जी उसी मुद्रा से और जरा हँसती हुई-सी उठ खड़ी होती हैं और दूसरे ही क्षण खिलखिला कर हँसती हुई क्षिप्रगति से कमरे के बाहर भाग जाती हैं। डिप्टी साहब मानों फुर्सत की एक लम्बी साँस लेकर रिसीवर कान से लगाते हैं और कौतूहल पूर्ण स्वर से बोलते हैं]

शर्माजी—हलो।

आवाज़—मुझे पहचान रहे हो ?

शर्माजी—[कुछ सोचकर] नहीं तो।

आवाज़—पर मुझे ख़ूब याद है, तुम्हीं ने अपनी एक शुरू की कविता मे लिखा था—मनुष्य का सब कुछ परिवर्तनशील है, पर कण्ठस्वर नहीं।

शर्माजी—[चुप, मानो कोई बीती बात याद करने की चेष्टा मे हैं]

आवाज़—अब भी नहीं पहचाना ?

शर्माजी—कुछ ठीक याद नहीं पडता। आप ही ज़रा मदद कीजिए।

आवाज—हाँ, अब क्यो पहचानोगे ? अब तुम आई० सी० एस० हो गये हो। विलायत भी हो आये हो। गोरखपुर के एक नामी वकील की लडकी से शादी भी की है और

[धीरे-धीरे मानो शर्मा जी की आकृति स्मृतिक्षेत्र के प्रकाशयुक्त होने से आवेगपूर्ण और आतुर होने लगती है। हाथों में ईषत् कंप होने से रिसीवर मानो सिहर सा उठता है। वे अस्फुट स्वर से कहने लगते हैं।]

शर्माजी—ओ...हो...मिस ता...रा...एम० ए० फाइनल के वे दिन—तुम्हारे साथ वे सीनियर क्लास के

लेक्चर—सब याद आ रहा है—भई माफ़ करना। मै इस समय शरीर से बहुत थका और मन से तो अब सदा के लिए ही अकर्मण्य-सा हो रहा हूँ। कहो आज-कल कहाँ हो, कैसी हो और ...एम० ए० के बाद अब तुम क्या कर रही हो ?

तारा—जिंदा तो देख ही रहे हो और क्या करोगे पूछ कर। क्या तुम अब भी कविता लिखते हो? तुम्हारा कोई सग्रह छपा ? [डिप्टी साहब धीरे धीरे मानो बहुत थक कर रिसीवर लिये हुए ही एक कुर्सी खींच कर बैठ जाते हैं। दूसरे हाथ से माथा थाम लेते हैं।]

शर्माजी—एक संग्रह अभी ही छपा है। क्या तुमने देखा नहीं ?

तारा—वक्त ही नहीं मिलता।

शर्माजी—करती क्या हो ? समय कैसे कटता है ?

तारा—ये बातें रहने दो। बताओ, अब भी कविता लिखते हो या नहीं।

शर्माजी—[थोड़ा रुककर] अब सिर्फ कहानी लिखता हूँ।

तारा—कविता अब बिलकुल ही नहीं लिखते ?

शर्माजी—उन्हीं दिनो कुछ लिखी थीं। फिर तब से—

तारा—बंद क्यो कर दी, बताओ।

शर्माजी—तुम अपना हाल तो कहो।

तारा—अपना हाल, अपना हाल [कुछ रुककर] इसी बीच दो हो चुके।

[शर्मा जी को मानो काठ मार गया]

तारा—तुम हँसे नहीं ?

शर्माजी—अच्छा फिर ? कुछ खबर तुमने क्यों नहीं दी ?

तारा—तुम्हारे साथ फिर बातचीत हो सकेगी, इसकी कोई उम्मीद नहीं थी। इस विवाहित जीवन के दो वर्षों में सिर्फ तीन बार घर से बाहर निकल सकी हूँ, सो भी खास खास मौकों पर। अबकी पहली बार पन्द्रह दिन के लिए मायके आ सकी हूँ। आज पतिदेव का तार आया—'फौरन भेज दो'। दाई के साथ वहीं जा रही हूँ। स्टेशन पर फोन देखकर एकाएक सूझा, तुमसे दो-दो बातें कर लूँ।

शर्माजी—[कुछ उत्तेजित से होकर] तुम्हारे पतिदेव कौन हैं ?

तारा—उन्हें तुम खूब जानते हो। वही तुम्हारे लड़कपन के क्लासफेलो—एच० डी० अस्थाना...

शर्माजी—[बीच में ही बात काट कर कुर्सी से यकायक उठकर] अरे-रे वह तो इंटर तक मेरे साथ था।

शर्माजी

फिर वह मेडिकल कालेज, लखनऊ, चला गया और मैने एम० ए० ज्वायन किया। बदमाश ने शादी की खबर तक नहीं दी। कानपुर के एक देहाती रईस का लडका है।

तारा—खबर कहाँ देता, विलायत ? खैर, जो हो, अभी तो थोडे ही दिन तुम्हे लौटे हुए। वे तुम से मिलने को बहुत दिन से तरस रहे है। पर तुम यह सब सुनकर क्या करोगे ?

शर्माजी—[चुप]

तारा—अच्छा एक बात बताओ। तुम क्या उस वक्त हिम्मत हार गये थे ?

शर्माजी—[गम्भीर मानसिक वेदना के साथ] कब ?

तारा—कब ? अच्छा जाने दो। जानते हो, मैने तुम्हे क्यो यकायक रिंग अप किया ? तुम्हारी पोस्टिग पर तुम्हे बधा— ...तुम्हे—

शर्माजी—हाँ हॉ, बताओ, बताओ।

तारा—तुम विलायत से आई० सी० एस० होकर लौटे हो, बढ़िया नौकरी मिली और बीबी भी और . ।

शर्माजी—[मानो कहीं दूर से बोल रहे हों] तारा! बस . ।

तारा—और एक बात।

शर्माजी—[अति मृदु स्वर मे] कहो।

तारा—अब तुम्हारे दिल में कोई काँटा तो नहीं चुभता ? अब शान्त तो हो ?

शर्माजी—मैं क्या बताऊँ ?

तारा—कहो कि अब सब ठीक हो गया।

[इसी बीच एक्सचेंज ने 'हरी अप प्लीज़' कहा और शर्माजी ने 'वन मिनट' कह कर फिर रिसीवर सँभाला।]

तारा—कुछ बोले नहीं।

शर्माजी—तुम्हारी गाडी की घटी हो रही है। तुम अब फिर लौटोगी नहीं ?

तारा—कहाँ ?

शर्माजी—नहीं लौटोगी ?

तारा—जैसे आज लौटी हूँ ?

शर्माजी—नहीं ! नहीं !!

तारा—तो इसी वक्त .

शर्माजी—[तेजी से, बड़े उत्तेजित स्वर में] अच्छा बस—

तारा—यही एक बात—आखिरी बात और सुन लो— सुनो......सुनो... . हलो ! ......हलो !! ......

[ठीक इसी समय उमाजी दाँत काढ़ कर हँसती हुई और थिरकती-सी हुई कमरे में फट पड़ती हैं। शर्माजी के हाथ से रिसीवर छूटकर अलग जा पड़ा

है और वह मानो अर्द्धचेतनावस्था मे किसी अन्य संसार में विचरण कर रहे हैं।]

उमा—[जरा उच्च स्वर से] पूड़ी ठढा हो रहा है !

शर्माजी—[मानो नींद से चौक कर] चलिए आते हैं।

[मनोहर चुपचाप आकर टेलीफोन यथास्थान रख देता है]

उमा—चलिए खाना खाकर सो रहिए। आँख बिलकुल लाल हो रहा है। देखे बुखार तो नही है।

[उमाजी उनकी देह का ताप देखने को अग्रसर होती हैं। वे अर्द्धनिमीलित नेत्र से अत्यत हताशभाव से उनकी ओर देखने लगते हैं, परदा गिरता है।]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—डाक्टर अस्थाना के मकान की बैठक जो हिन्दुस्तानी ढग से सजी हुई है। कमरे के पीछे की ओर की दीवार से सटे हुए करीब १½ .फुट ऊँचे दो बड़े बड़े तख्त बिछे हुए हैं। तख्त पर दो सज्जन बैठे हैं। इनमें एक पंडित श्रीराम शर्मा हैं और दूसरे डाक्टर अस्थाना हैं। अस्थाना एक कृशकाय गौरवर्ण के प्रायः २८ साल के युवक हैं। शरीर की दुर्बलता और चेहरे का पीलापन, धँसी हुई आँखे और चिपके हुए

गाल तथा उभरा हुआ गडस्थल और कपोल की हड्डियाँ आपके स्वास्थ्य का मानो विज्ञापन दे रही हैं। इस समय कमरे में और कोई नहीं है। डिप्टी साहब उस दिन से आज ज़रा ख़ुश मालूम होते हैं। पर चतुर निरीक्षक तुरन्त कह देगा कि उनका यह भाव क्षणिक या बनावटी है। उनका स्थायी भाव नैराश्यपूर्ण यहाँ भी ध्यान से देखने पर मालूम हो जाता है।]

[शाम हो चुकी है और नौकर अभी अभी हुक्के पर ताज़ा चिलम चढ़ा कर गया है। घर में दावत की-सी चहल-पहल की आहट आती है। डाक्टर साहब के लड़के का अन्नप्राशन संस्कार हुआ है।]

डा० अस्थाना—हमने सुना है कि जब से तुम विलायत से लौटे हो तब से तुम पर टिकट लग गया है। हमारे जैसे मामूली आदमियों से तो हुज़ूर अब मिलते भी नहीं।

शर्माजी -- [ईषत् हास्य कर चुप रह जाते हैं]

डा० अस्थाना—आखिर मामला क्या है? विलायत गये, सिविल सर्विस की नौकरी भी मिली, गोरख-पुरवाले वकील साहब की लड़की से शादी की, फिर भी दावत का कहीं नाम निशान तक नहीं!

शर्माजी—[शादी का हवाला सुनते ही ज़रा तावपेच

खाकर और गंभीर होकर] शादी की दावत असल में तुम्हे देनी चाहिए। तुम्हे एम० ए० तक पढ़ी हुई एक 'एडवास्ड' लेडी बीबी के रूप में मिली है और मेरा क्या। नामी वकील की लड़की होने से क्या होता है ? खुदा ही .खैर करे !

डा० अस्थाना—हाँ भई, हमने भी कुछ उड़ती खबर सुनी है कि तुम्हारा विवाहित जीवन सुखी नहीं है।

शर्माजी—सुखी ! हुँः [मार्मिक यत्रणा-सूचक व्यग्यात्मक हॅसी]

डा० अस्थाना—[शर्माजी की पीठ पर प्रेम से हाथ रखते हुए कुछ मुसकुराते और रोज़मर्रा के सहानुभूतिसूचक स्वर में] तो तुम भाभी को पढ़ाते क्यो नही ? सुना है, उनकी भोजपुरी मिश्रित खड़ी बोली से तुम्हारा नाकों दम है। पर यह सब तो तुम ठीक कर ले सकते हो। ज़रा उर्दू पढाकर उनकी जबान सुधारो। सोसाइटी में निकालो। थियेटर, बायस्कोप ले जाओ। .खुद रोज़ ज़िमखाना टेनिस खेलने जाते हो। 'ऍग्लो इडियन गर्ल्स' के साथ 'मिक्स' करते हो। उन्हे क्यो नहीं ले जाते।

शर्माजी—[मानो डाक्टर का एक एक शब्द उनके कलेजे में तीर की तरह घाव करता चला गया हो। एक

मार्मिक और सूखी हँसी हँसते हुए]—हाँ हाँ, जरूर ले जायँगे।

डा० अस्थाना—[जरा गभीर होकर मानो शर्माजी की अनुभूति की गहराई की कुछ थाह पाकर] ऐसा ही था तब ऐसी शादी ही क्यो की? इतनी उच्च शिक्षा पाकर तुमने क्या सीखा?

शर्माजी—[एकाएक उत्तेजित हो आँखो मे बिजली की चमक लाकर एक क्षण डाक्टर की दृष्टि मे अपनी दृष्टि गड़ा देते हैं] हूँ।

डा० अस्थाना—थैंक यू, मगर यार अभी तक इस लड़की को मै पहचान न पाया। आज तीन बरस होने को आये, दो लड़के भी हो चुके, मगर मैं जितना ही उसके अतस्तल के पास जाने की कोशिश करता हूँ, उतना ही उसे जटिल और दुरूह पाता हूँ।

शर्माजी—[एक रहस्यपूर्ण विजय-गर्व-मिश्रित मुसकान और कुछ तिरछी चितवन के साथ] इतना समझ गये आप? मगर अभी क्या?

डा० अस्थाना—हाँ यार हमें अभी हाल मे ही पता चला है कि तुम सालो तक उसके क्लासफेलो रहे हो।

शर्माजी—[गम्भीरता से] हाँ, रहा तो हूँ। इटर के बाद

शर्माजी

जब तुम डाक्टरी पढ़ने चले गये और मैंने डिग्री कोर्स ज्वायन किया तभी वे भी कालेज में आईं और संयोग से मेरे ही सेक्शन में पढी। तब से एम० ए० तक बराबर साथ रहा।

डा० अस्थाना—[कुछ अप्रतिभ और चिन्ताकुल-सा होकर] तब तो यार तुम्हे उसे 'स्टडी' करने का अच्छा मौका मिला होगा। कुछ बताओ तो सही वह है कैसी।

शर्माजी—[मतलब भरी मुस्कुराहट के साथ] आखिर क्या बतावें ? कोई खास बात पूछो तो बतावें भी।

डा० अस्थाना—[बालोचित चचलता के साथ] खास बात क्या—अच्छा पहले यही बताओ, क्या तुम उसे ख़ूबसूरत कह सकते हो।

शर्माजी—[गभीर होकर सिगरट जलाते हुए ईषत् हास्य के साथ] हाँ, बहुत ख़ूबसूरत।

डा० अस्थाना—बहुत नही, सिर्फ ख़ूबसूरत ही कहो।

शर्माजी– हाँ, सिर्फ ख़ूबसूरत।

डा० अस्थाना—ऐसे नही—कुछ विशेष बताओ। किसकी तरह है ?

शर्माजी—वह सिर्फ़ सुन्दरी है, किसी से उसकी तुलना असभव है।

डा० अस्थाना—[उत्तरोत्तर कौतूहल बढ़ाते हुए कुछ अवाक् से] अच्छा मुख के बारे मे कुछ कहो।

शर्माजी—[नतमस्तक और विचार मे डूबे हुए-से] सेवार से भरी हुई एक बावली में बहुत-से कमल खिले हुए थे। एक आदमी कमल तोड़ रहा था। तोड़ते तोड़ते उसने देखा कि उनमे से एक कमल नहीं है। वह एक नवयुवती का मुख है। वह मुख उसी का है जिसे तुम ब्याह लाये हो।

डा० अस्थाना—[सतोष से] अच्छा, अच्छा यह सब तो हुआ। उसकी उच्च शिक्षा और सस्कृति के बारे मे क्या कहते हो?

शर्मा जी—उच्च शिक्षा प्राप्त लडकियाँ प्यार नही कर सकतीं [कुछ रुककर वही सूखी हँसी हँसते हुए] और अपढ़ लडकियाँ प्यार करना जानती नहीं। यही हमारी और तुम्हारी स्त्री मे फर्क है।

डा० अस्थाना—[कुछ हैरान होकर] तब तो बडी मुश्किल है।

शर्माजी—[एकाएक सिर उठा कर] नहीं, नहीं, कहीं और कुछ न समझ लेना। तारादेवी में एक बात और है। इनमें अपढ लडकी की-सी सरलता और

सुसंस्कृत स्त्री का-सा सौहार्द दोनों हैं। प्यार के अलावा उनमें प्रेम भी है।

डा० अस्थाना—[और हैरान होकर कौतुकपूर्ण दृष्टि से शर्मा की ओर देखकर जो फिर ध्यानमग्न-से होकर स्थिर दृष्टि से तश्तरी मे रक्खे हुए पानों को देख रहे थे] अच्छा भई, 'प्यार' और 'प्रेम' मे क्या फर्क निकालते हो ?

शर्माजी—प्यार पौधा है, प्रेम है उसमे खिलनेवाला सुन्दर फूल। सब पौधो मे फूल नहीं खिलता। जो चतुर माली-द्वारा यथाविधि सींचे जाते हैं उन्हीं में वह फूल खिलता है और फिर अनाडी माली के हाथ मे पड़ने पर चुपचाप नष्ट भी हो जाता है, और

डा० अस्थाना—[कुछ चिंतायुक्त और सशक होकर] अच्छा, बस बस;—अच्छा उसकी आँखो के बारे मे तुम्हारी क्या राय है ?

शर्माजी—[कुछ जोर से हॅस कर डाक्टर से निगाह मिलाते हुए] बिना देखे शादी करके घर मे जोड़ बैठानेवालों की यही दशा होती है। उनकी आँखों मे कोई खास बात तो नहीं है, सिर्फ यही है कि अगर तुम उनके सामने खडे होओ तो अपनी

तसवीर उनमे देखोगे। वे शून्य की दो बूँदे हैं। फिर भी वे वैसी हैं मानो उन्हे अनेक बार देखा है, पर कहाँ, यह याद नहीं। फिर [मानो अर्ध-चेतन-से होकर आप-ही-आप] देखने से ऐसा जान पड़ता है, मानो जन्मजन्मान्तर से तुम उन्हीं आँखों की तलाश मे थे। उन आँखो मे सुन्दरी-सुलभ चपलता या भ्रूक्षेप, कटाक्ष आदि की हरकत नहीं देखोगे। उनमे जीवन की गम्भीरता है। उनमे लालसा नही, साधना है।

डा० अस्थाना—[मानो वेदवाक्य सुन रहे हों]—भाई वाह; खूब; कहते चलो।

शर्माजी—[मानो सुना ही नहीं] तुम जब उनके पास बैठोगे तब ऐसा मालूम होगा मानो सजीव प्रकृति की गोद मे बैठे हो। तुम्हे उनकी समष्टिरूप से आराधना करने की इच्छा होगी।

डा० अस्थाना—सिर्फ़ आराधना, प्यार करने की नहीं?

शर्माजी—[अत्यन्त गम्भीरता से] प्यार करना ही भर तुम्हारा भाग्य होगा और कर्त्तव्य भी होगा, प्यार पाना नही।

डा० अस्थाना—[कुछ विचलित और सभय-से होकर] तो फिर यह सब किसलिए?

शर्माजी—[कुछ सँभल कर] कुछ लड़कियाँ प्यार पाना ही भर अपना हक समझती हैं, प्यार करना नहीं। पुरुष के प्रेम से वे मुग्ध हो सकती हैं, पर उस मुग्धता को उनका प्यार समझना महाभ्रम है। वे अर्घ्य चाहती हैं, इसी से उन्हे हम लोग 'देवी' कहते हैं। अर्घ्य और पूजा के प्रतिफल में हम अधिक से अधिक 'प्रसाद' पा सकते हैं। मगर प्यार—

डा० अस्थाना—क्या 'वे' भी ऐसी ही स्त्रियो में से एक है?

शर्माजी—[रहस्यपूर्ण दृष्टि से] यह तुम खुद खोज निकालो। [फिर मानो किसी दूसरी दुनिया में जाकर] उनके सामने खड़े होते ही तुम्हे ऐसा ज्ञान होने लगेगा, मानो तुमने उनके प्रति बड़ा अनुचित आचरण किया है। ज्यो ज्यो तुम उनके समीप जाओगे, तुम्हे अपनी असमर्थता, अयोग्यता तथा क्रूरता का परिचय मिलता जायगा।

डा० अस्थाना—[गम्भीरता से] तुम्हारी ये बातें जरा समझ मे नहीं आई शर्मा।

शर्माजी—अभी नहीं कुछ दिन मे समझ सकोगे।

डा० अस्थाना—अच्छा जाने दो, तुम हमको भी तो खूब जानते हो। ठीक बताओ, क्या तुम्हारी राय में हमारी इसकी निभेगी नहीं।

शर्माजी—[बाहर दालान की ओर शून्य दृष्टि से] तुम्हारी इनकी नहीं भी निभ सकती है।

डा० अस्थाना—[हँसकर] ऐसा न कहो खुदा के लिए। पर ऐसी बात उसमें क्या है? मुझे तो अभी कुछ मालूम नहीं हुआ।

शर्माजी—[आलस्य से अँगडाई लेकर] तुम्हें कभी भी न मालूम होगा। बात सिर्फ यही है कि उनमें आत्मनिर्भरता की मात्रा बहुत अधिक है। उसे चाहो तो अभिमान भी कह सकते हो। अगर तुम उनके लायक नहीं हो सकते तो वे आसानी से तुम्हे छोड़कर चली जा सकती हैं। ससार उन्हे बाँध नहीं सकता, प्रेम भी उन्हे वशीभूत नहीं कर सकता।

डा० अस्थाना—[तमककर] गलत! बिलकुल ग़लत!! तुम क्या जान सकते हो उसे—उसमें स्वतन्त्रता तो है ही नही।

शर्माजी—वे स्वतन्त्र नहीं, सहज हैं। तुमने अगर कुछ भी उन्हे जाना है तो तुम्हे मालूम हुआ होगा

कि जिसे स्त्री-स्वभाव कहते हैं उसका उनमें नितांत अभाव है। स्त्री की स्वार्थ परायणता, तुच्छ लोलुपता, ईर्ष्या, अलकार, प्रसाधन आदि का लोभ, तुच्छ छल-कपट, प्रतिहिंसा आदि उनमें नहीं देखोगे। वे पुरुष हैं। उन्हें स्त्री चाहिए और यदि तुम उनके अनुकूल स्त्री नहीं हो सकते तो .

डा० अस्थाना—शर्मा, तुम पागल तो नहीं हो गये हो। क्या अनाप शनाप बक रहे हो ? अभी तो ठीक थे।

शर्माजी—[उनका चेहरा इस वक्त तक सुर्ख और आँखें मानो धीरे धीरे सुलगती जा रही थीं] पर तुम स्त्री नहीं हो सकोगे।

डा० अस्थाना—[जरा प्रकृतिस्थ होकर] अच्छा आखिर उसे खुश करने के लिए क्या करना चाहिए ? उसकी पसन्द क्या है ? उसे क्या अच्छा लगता है ? तुम्हें तो उसका 'टेस्ट' हमसे कहीं ज़्यादा मालूम होगा।

शर्मा जी—[उसी भाव से] उनका टेस्ट ? उनकी पसन्द ! [क्षण भर के लिए ज़रा हलके होकर मुसकुराते हुए] उन्हें सब अच्छा लगता है। उन्हें कोई चीज नापसन्द नहीं है। पर वे ख़ास तौर से खुश होती हैं तितलियों को फूलों के पौधों पर उड़ते देखकर। खिलखिला कर हँसती हुई उन्हें पकड़ने की चेष्टा करती हैं।

पकड़ने मे असफल होने पर भी उसी प्रकार हँसती रहती हैं। पर कोई दूसरा अगर पकड़ कर देना चाहेगा तो नाराज हो जायँगी। पकड कर छोड़ने, फिर पकड़ने और फिर उडाने मे उन्हे बड़ा मजा आता है। और फिर दूर से रेलवे इंजन के सिर पर लगी हुई सर्चलाइट की रोशनी उन्हे अच्छी लगती है। अस्तकालीन सूर्य और उसकी लालिमा से मडित नभमंडल वे घटो खड़ी एकटक देख सकती हैं। और सब

डा० अस्थाना—[विरक्तिसूचक स्वर से और सदेहात्मक दृष्टि से] अच्छा, अच्छा, बस बस। यह सभी ऐसी बाते हैं जिन पर हमारा कुछ जोर नही और—

शर्माजी—[मानो सुना ही नहीं और मानो उन्हे इसकी परवा नही कि कोई उनकी बात सुन रहा है कि नही] और हाँ, तुम्हारे लिए यह सब कठिन है, पर तुम्हारे लिए सबसे कठिन है उन पर प्यार प्रकट करना। वे तुम्हारे लिए सबसे कठिन घड़ियाँ होगी जब तुम उनसे प्यार की बातें करने की कोशिश करोगे। ऐसे मौको पर तुम अपनी जबान बन्द पाओगे, उलटे अपने को खुद-बखुद बनावटी और बेहया कहकर धिक्कारने के लिए शब्द खोजने

लगोगे। सचमुच सबसे कठिन है उसको प्यार जताना—सचमुच सबसे कठिन। [एक लम्बी साँस लेते हैं फिर कुछ रुक कर कहने जाते हैं, डाक्टर भौंचक्का-सा उनका एक एक शब्द मानो पी रहा है, उसकी दृष्टि मे संदेह का भाव बढता जा रहा है] और मजा तो यह है कि ज्यों ज्यो दिन बीतेगा त्यों त्यो तुम अपने को उसके सामने तुच्छ से तुच्छतर पाते जाओगे। [एकाएक उग्र रूप धारण कर] मालूम होगा, गला उन्होने धर दबाया है। पर साथ ही तुम्हे यह सदा स्पष्ट रहेगा कि वे हमेशा के लिए तुम्हारी पहुँच के बाहर की चीज़ हैं। फिर भी तुमको मालूम होगा कि उनका पीछा करने से बाज़ नहीं आ सकोगे

डा० अस्थाना—'सम् थिंग राग विद योर ब्रेन, [घड़ी देखते हुए] चलो उठो अब लोग इकट्ठा हो रहे हैं, दावत का वक्त हो आया—

शर्माजी—[उसी भाव से] रोज तुम कोशिश करते होगे कि किसी तरह कहे—"मै तुम्हे प्यार करता हूँ।" पर रोज़ तुम असफल होगे। उनको प्यार की बात सुनने की परवा तो है ही नहीं और इसी से इन मौक़ों पर तुम्हारी ज़बान में मानो कोई ताला लगा देगा।

शर्माजी

[किसी आभ्यतरिक उद्वेग से उनकी आँखे अब तक तप्तागारवत् हो चुकी थीं] तुम इन मौकों पर अपने को बहुत ही थका हुआ, पस्त और मुहताज मानने को मजबूर होगे।

डा० अस्थाना—[व्यंग्य से] उसके साथ शादी करने की यह सजा है।

शर्माजी—[क्षण भर के लिए मानो एक उत्कट आनद का अनुभव करके] हाँ, यही दंड तुम्हे भोगना पडेगा। [फिर गभीर होकर] तुम्हारा क्या पुरुषमात्र के प्रेम का शायद यही पुरस्कार है। यदि तुम्हारे आँखे हैं तो तुम्हे मालूम हुआ होगा कि इस शादी से उनमे कोई परिवर्तन नही हुआ। उनका परिवर्तन किसी को मालूम नहीं होता। हैं तो वे स्त्री, पर उनका सब कुछ मन, बुद्धि आदि पुरुष का है। उनके हृदय की किस तह मे उसका स्त्री-रूप लुका-छिपा पड़ा है--यही खोज निकालना तुम्हारी साधना होगी, और यदि इसका आविष्कार किये बिना ही तुम उन्हे प्यार दिखाने की कोशिश करोगे तो वे हँस पड़ेगी। तुम केवल यही समझोगे कि वह हृदयहीन और निर्दय हैं—तुमसे वह किसी कारण

उदासीन हैं। और सबसे कठिन समय वह आवेगा जब वे तुम्हे भूल जायेंगी।

डा० अस्थाना—अच्छा! वह भी संभव होगा?

शर्माजी -हाँ होगा। वे तुम्हें भूल जायेंगी और भूल कर भी तुम्हे याद न करेंगी। उनका रूप ही यही है।

डा० अस्थाना—पति से वह ऐसा व्यवहार करेगी?

शर्माजी—[दयालु भाव से] पति से नहीं, तुमसे। उनका पति कोई नहीं है। रात को तुम सोते-सोते उठ खडे होगे, तुम्हे मालूम होगा सैकड़ों बिच्छू एक साथ तुम्हें डँस रहे हैं, पर तुम चिल्ला कर किसी को सहायता के लिए नहीं बुला सकोगे। मालूम होगा तुम्हारा सर्वाङ्ग कोई आबद्ध किये हुए बैठा है।

डा० अस्थाना—[बहुत उद्विग्न होकर] अच्छा, उठो चलें, अब हम और नहीं सुनना चाहते, लोग बैठे इंतजार करते होंगे—

शर्माजी—[अत्यन्त उत्तेजित हो अपना जलता हुआ मुँह और फैली हुई आँखें उठाते हुए डाक्टर के मुँह से करीब करीब सटा कर और उनका हाथ पकड कर बैठाते हुए। डाक्टर कुछ सहम कर सुनने को बाध्य होता है] सुनो, दावत तो खायेंगे ही, पर एक

बात और सुन रक्खो। तुम जितना ही प्रेम दिखाने की चेष्टा करोगे वे उतना ही आँख उठाकर भी तुम्हारी ओर न देखेगी। तुम्हे अपना सिर पटक देने की प्रबल इच्छा होगी। एक-मात्र स्त्री के लिए तुम्हारी निगाह मे सारा विश्व भयावह हो उठेगा।

[इतना कह कर वे मुँह हटा लेते हैं और हाथ छोड़ कर मानो यह जानने की चेष्टा करते हैं कि डाक्टर उन्हे सन्देह की दृष्टि से देख रहा है कि नहीं। पर डाक्टर और बैठ नहीं सका। वह भयभीत-सा होकर एक विचित्र दृष्टि से देखता हुआ और यह कहता हुआ भीतर जाता है।]

डा० अस्थाना—देखे, सब लोग आ गये हो तो तुम्हे अन्दर लिवा ले चलें।

शर्माजी—[मानो सुना ही नहीं। डाक्टर के जाने पर वे धीरे-धीरे एक सिगरेट निकाल कर तख़्त से नीचे उतरते हैं और आगे दालान में आते हैं। दालान मे कुछ अँधेरा है। वे ऊपर को दृष्टि उठाते हैं, थोड़ा-सा आकाश दिखाई पड़ता है। कुछ देर तक शून्य में टकटकी लगाये देखते रह जाते हैं। धीरे-धीरे सिर नीचा करके जेब से दियासलाई निकाल कर सिगरेट जलाते हैं। उनके दोनों हाथ अभी तक

शर्माजी

थर-थर काँप रहे हैं। वे मानो यह सोच रहे हैं कि उन्होंने कोई ऐसी बात तो नहीं कही जिससे डाक्टर को उन पर सन्देह हो गया हो। धीरे-धीरे परदा गिरता है।]

दूसरा उपाय ही क्या है ?

नाटक के पात्र

सुरेश—विश्वविद्यालय का एक छात्र ।

महेश—उसका मित्र ।

नरेन्द्र—एक युवक रईस ।

सीता—उसकी पत्नी ।

समय—सायकाल ७ बजे ।

स्थान—सुरेश की बैठक ।

प्रथम दृश्य

[सुरेश अपनी बैठक में एक कुर्सी पर बैठा हुआ एक अखबार पढ रहा है। बैठक मामूली ढग की सजी हुई है। एक ओर एक छोटा मेज है और कुछ कुर्सियाँ हैं और दूसरी ओर एक तख्त है जिस पर साफ दरी और चद्दर बिछी है और दो तकिया रक्खे हुए हैं। दीवार मे एक ओर एक आलमारी है जिसमें पुस्तकें सजी हुई हैं और उसी के एक खाने में कई 'शील्ड' और चाँदी के 'कप' भी रक्खे हुए हैं जो कि टूर्नामेंट [खेलों] में सर्वश्रेष्ठ आने पर विजय के उपहार-स्वरूप सुरेश को मिले हैं। सुरेश की अवस्था पच्चीस के लगभग, शरीर सुगठित और सुडौल, कद मझोला और रङ्ग साँवला है। पहनावा

दूसरा उपाय ही क्या है ?

साधारण धोती कुरता; चेहरे पर शिशु की-सी सरलता स्पष्ट है। वह अखबार रखकर उठना ही चाहता है कि उसका एक पुराना मित्र महेश प्रवेश करता है। यह एक लंबे क़द का गौर-वर्ण नवयुवक है और अँगरेजी 'ईवनिग सूट पहने हुए है। देखने से काफ़ी चचल पर साथ ही तीव्र बुद्धि का मालूम होता है।]

महेश—तुम लखनऊ में कब आये ? अब की तो पूरी छुट्टी वहीं बिताई !

सुरेश—ओहो, खूब आये। आज ही सुबह मै आया हूँ, और खाना खाकर दिन भर सोता रहा हूँ। अभी-अभी उठकर तुम्हारे ही यहाँ आने की सोच रहा था कि तुम्हीं आ गये। [सुनने से कठस्वर स्त्रियो के स्वर से भी मीठा बल्कि एक चार वर्ष के बच्चे का-सा जान पड़ता है।]

महेश—[अर्थभरी मुस्कुराहट के साथ] हाँ, अब और कहाँ जाने की सूझेगी ? पहले तो महीनो बीत जाते थे तब कहीं

सुरेश—[मतलब न समझ कर] क्या, क्या अब कोई नई बात हो गई, या तुम कोई दूसरे हो गये या मैं बदल गया ?

दूसरा उपाय ही क्या है ?

महेश—बदले न तुम न हम, पर एक नई बात जरूर हो गई है जिसका तुम्हे कदाचित् अब तक पता चल गया होगा।

सुरेश—[बच्चों की-सी उत्सुकता और कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए] क्यो क्यो, क्या बात हुई है ? जल्दी बताओ। कौन-सी बात हो सकती है जिसकी वजह से मुझे तुम्हारे यहाँ जाने पर बाध्य होना पडे !

महेश—तुम रहे बस वही। अरे भले आदमी, तुम हमारा मतलब ही नहीं समझे बिलकुल। अब सब खोलकर कहना ही पडेगा। बात यह है कि पहले जहाँ तुम रोज आते जाते थे वह रास्ता तुम्हारे और हमारे दोनो ही के सौभाग्य से बन्द हो गया। अब तुम जा ही कहाँ सकते हो सिवा मेरे

सुरेश—[एकाएक किसी अनिष्ट की आशका से त्रस्त होकर] क्यो, क्यो, क्या सीता अब

महेश—[एक नटखट हँसी के साथ] यार, तुम बिलकुल बच्चे हो। अकसर लोगो को ताज्जुब होता है कि तुम बी० ए० वगैरह कैसे पास कर ले गये और खेल में भी इतना नाम किया।

सुरेश—[जरा चिढ़कर और आवेश में खड़े होकर] तुम बताओगे कि नहीं ? क्या सीता कहा ..

दूसरा उपाय ही क्या है ?

महेश—[गभीरता से] हाँ, सीता कहीं चली गई।

सुरेश—[कुछ स्वस्थ होकर] खैर बस यही न, गई है तो दो-चार रोज में फिर आ जायगी। [बैठकर स्वस्ति की साँस लेता है।]

[महेश अति गभीर भाव से कुछ देर तक सुरेश के भोले चेहरे की ओर देखता रह जाता है, धीरे-धीरे उसकी आँखे शरत्कालीन सरोवर की भाँति अश्रुपूर्ण हो जाती हैं। सुरेश का ध्यान कुछ देर बाद महेश की इस मुद्रा की ओर आकर्षित होता है और उसकी भरी आँखों पर ग़ौर करते ही वह तेजी से महेश के पास आकर बैठ जाता है और उसके दोनो हाथ अपने हाथो मे लेकर एकटक आश्चर्य से उसके मुँह की ओर देखता रह जाता है। मानो सहानुभूति से उसकी आँखे भी भर आती हैं। महेश कुछ क्षण और इसी अवस्था मे रहने के बाद रुँधे गले से सिर्फ़ इतना ही कह पाता है] सुरेश !

सुरेश—[अब एक-दम रो पड़ता है, टपाटप आँसू की दो बड़ी बड़ी बूँदे उसके भरे और पुष्ट कपोलों पर आ गिरती हैं] आखिर बात क्या है महेश ? तुम पहेली पर पहेली रखते जा रहे हो ! कुछ बताओगे भी ?

महेश—अच्छा सुरेश, क्या तुम सीता को बहुत ज़्यादा प्यार करते हो ?

दूसरा उपाय ही क्या है ?

सुरेश—[स्त्रीसुलभ लज्जा के साथ और बडे ही मधुर स्वर में] क्या तुम्हे मालूम नहीं ?

महेश—हाँ, हमें खूब मालूम है, इतना मालूम है जितना कि शायद तुम खुद न जानते होगे, और इसी से मुझे इतनी चिंता हो रही है।

सुरेश—पर इसमें चिता की बात ही क्या है ? अभी अभी तुमने कहा है कि वह सिर्फ कहीं चली गई है, फिर इसमें घबराने की बात ही कौन-सी है ?

महेश—पर वह अगर कम से कम तुम्हारे लिए हमेशा के लिए कहीं चली गई हो तब ?

सुरेश—[बलि होनेवाले निरीह जीव की भाँति एकाएक त्रस्त और आकुल होकर] भई, साफ़ बताते क्यों नहीं ? खैर तुम साफ़ नही बतलाते मैं अभी ज़रा बाहर निकल कर खुद सब मालूम कर लूँगा। इधर छुट्टियों मे दो महीने बाहर रहा, इसी बीच क्या गजब हो जायगा।

महेश—अच्छा क्या इस दर्म्यान सीता ने तुम्हें कोई चिठ्ठी नहीं लिखी ?

सुरेश—शुरू में मैंने लखनऊ पहुँचते ही जो खत लिखा था उसका छोटा-सा जवाब उसने लिख भेजा था और उसमें उसने यह बात खूब स्पष्ट कर दी थी कि

दूसरा उपाय ही क्या है ?

अब हम लोगों में पत्र-व्यवहार न होना चाहिए। उसके घर के लोग बुरा मानते हैं। मैंने फिर पत्र लिखना बन्द कर दिया और फिर कभी इस विषय पर विचार भी नहीं किया।

महेश—जनाब, बात बिलकुल इतनी नही है। [एकाएक कुछ रुक कर ऊपर देखते हुए मानो स्वगत] हे भगवन्! स्त्रियों के लिए कितना आसान होता है भोले-भाले प्रेमनिर्भर पुरुषो को चकमा देना! भोले क्या, बड़े बडे अनुभवी समझे जानेवाले समझदार लोग भी इन मामलो मे और ऐसे मौको पर मामूली स्त्री के मुकाबिले में भी ऐसी मुँह की खाते हैं कि . ..

सुरेश—[यह कटाक्ष सुनते ही उसके स्वस्थ साँवले चेहरे पर एक अपूर्व लालिमा दौड जाती है और वह मानों आवेश से कहता है] बस! बस! स्त्री-जाति के ऊपर यह दोषारोपण तुम्हे शोभा नहीं देता महेश! नही बताना चाहते तो कोई और बात छेड़ो, हम यह सब नही सुनना चाहते [चेहरे पर अधैर्य के भाव स्पष्ट हो जाते हैं]

महेश—[एक सूखी हँसी हँसकर] Don't be a sentimental fool [मूर्खों की-सी भावप्रबलता न दिखाओ] जो लड़की एक भोले और विश्वासी और

सर्वथा योग्य नवयुवक से इतने दिन प्रेम का स्वाँग रच और विवाह का वचन दे सिर्फ ऐश्वर्य के लोभ से किसी बड़े रईस के लड़के से शादी कर ले उसको तुम क्या कहोगे ?

सुरेश—[एक-दम सन्नाटे मे आकर] क्या ? सीता का विवाह हो गया ! यह असम्भव है । हम और वह तो परमात्मा की दृष्टि मे विवाहित थे । [एकाएक मुस्कुराहट की क्षीण रेखा के साथ] उसी के आग्रह से हम लोगो ने एक दिन परमात्मा को साक्षी देकर परस्पर चिर साथी होने की प्रतिज्ञा की थी ।

महेश—[विस्फारित नेत्रो मे उसकी ओर देखते हुए] क्या ? यहाँ तक नौबत पहुँच चुकी थी ' यह नहीं मालूम था । अब जा के जरा आँखे खोल कर देख कर आओ— वहाँ तुम्हारी स्वय परिणीता सीता इस समय यहाँ के मशहूर रईसजादे नरेन्द्र बाबू की सहधर्मिणी-रूपेण सस्थिता हो रही है ।

सुरेश—[क्षण भर के लिए उसके चेहरे पर मानो आग का पानी पड़ जाता है और आँखो मे बिजली दौड़ जाती है पर तुरन्त ही यह भाव बदल कर एक अपूर्व उदासीनता मे परिणत हो जाता है और वह सिर नीचा किये हुए धीरे धीरे कहने लगता है] इस

दूसरा उपाय ही क्या है ?

विवाह के लिए वह स्वय उत्तरदायी नही हो सकती। वह हिन्दू-समाज की चक्की मे पड कर चाहे जिसके भी साथ विवाह करने पर बाध्य क्यो न हो, पर उसका हृदय और कोई नही पा सकता।

महेश—[सन्न होकर आँखे फाड़ फाड़ कर उसकी ओर देखता रह जाता है] सुरेश ! तुम सचमुच इस युग के क्या किसी भी युग के मनुष्य नहीं हो। तुम बस अजीब हो। [उसके ललाट पर बहुत-सी बले पड़ जाती हैं और वह गम्भीर चिन्ता मे निमग्न उठ खडा होता है।] पर मुझे जो आशका थी वह निर्मूल मालूम होती है।

सुरेश—[साथ ही खडे होकर एक खिन्न हँसी के साथ ग्लानिपूर्ण स्वर से] तुमने क्या सोचा था कि मैं उसका या उसके पति का खून कर दूँगा, या मै अपनी ही हत्या कर डालूँगा ? सुनो महेश, यह सब कुछ नहीं होगा। पर एक बार— सिर्फ़ एक बार— उससे मिल कर दो बाते जरूर करूँगा और यह काम आज ही बल्कि अभी ही जाकर करता हूँ। अब यही एक काम मुझे करना है।

महेश—[व्यंग से] जब तुम्हारे विचार इतने उच्च हैं तो एक बार मिलने की इच्छा क्यो ? याद रक्खो कि

दूसरा उपाय ही क्या है ?

वह अब पर-स्त्री है। अब उसकी बात सोचना भी तुम्हारे लिए पाप है, मिलना तो बहुत बड़ी बात है।

सुरेश—[मर्म्माहत होकर] महेश ! शायद तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि मै किस लिए उससे मिलना चाहता हूँ। मै उससे क्षमा-याचना करूँगा।

महेश—[गम्भीरता से] सुरेश ! तुम सचमुच एक पहेली हो [चिन्तित रूप से महेश का प्रस्थान; पट परिवर्तन]।

द्वितीय दृश्य

[स्थान—सीना का पतिगृह; समय वही, करीब एक घंटा बाद; सड़क के किनारे एक विशाल भवन का दरवाजा। एक गढवाली सिपाही खुखड़ी और बन्दूक लिये फाटक पर एक तिपाई पर बैठा हुआ है। सुरेश कुछ व्यग्र रूप से वहाँ उपस्थित होता है और बेधड़क अन्दर घुसना ही चाहता है कि वह सिपाही रास्ता रोक कर खड़ा हो जाता है और पूछता है]

सिपाही—आप किससे मिलना चाहते हैं ?

सुरेश—[कुछ अप्रतिभ होकर पर दृढता से] नरेन्द्र बाबू की स्त्री से।

दूसरा उपाय ही क्या है ?

सिपाही—[चकपका कर इस तरह सुरेश की ओर देखता है मानो सुरेश की दिमाग़ी हालत पर सन्देह है] आप .. आप . बहू जी से मिलना चाहते हैं। ...[एक जगली हँसी हँसता है]

सुरेश—[कुछ रोष से पर अत्यन्त गम्भीरता और दृढ़ता से] तुम जाकर भीतर खबर दे सकते हो या नहीं ?

सिपाही—[सुरेश के इस दृढ भाव से रोब में आकर] क्या नाम बतलाऊँगा ? [ठीक इसी समय प्रायः २० वर्ष की एक युवती बग़ल के कमरे का पर्दा हटा कर सिपाही और आगन्तुक की बातचीत सुनने की इच्छा से दरवाजे की ओर झाँकती है। उसकी दृष्टि हठात् सुरेश की दृष्टि से मिल जाती है। वह चौंक कर इस तरह आपादमस्तक सिहर उठती है जैसे एकाएक हवा का झटका खाकर बेत की लता काँप उठती है। वह तुरन्त ही पर्दा खींच कर कमरे की ओर अन्तर्द्धान हो जाती है।

सुरेश—[मुसकुरा कर] कह दो सुरेश बाबू मिलने आये हैं, वह समझ जायगी। [सिपाही अन्दर जाता है और क्षण भर बाद ही बाहर लौट कर कहता है]

सिपाही—साहब, बहूजी कह रही हैं कि जाकर कह दो बाबू घर पर नहीं हैं।

दूसरा उपाय ही क्या है?

[सुरेश की आँखे आश्चर्य से विस्फारित हो जाती हैं और वह कुछ क्षण तक सिपाही की ओर देखता रह जाता है।]

सिपाही—[जरा मुसकुराकर अपनी तिपाई पर बैठने का उपक्रम करता हुआ] जाइए साहब, देखते क्या हैं, बाबू हैं नहीं, बडा लोग का मामला है, फेर किसी दोसरा बखत मे आइएगा।

[घृणा की दृष्टि से सिपाही की ओर देखता हुआ सुरेश लौट पड़ता है। पर दो कदम बढ़ते ही रईसाना ठाठ के एक नवयुवक से, जो कि उसी दरवाज़े की ओर मुड़ते हैं, उसकी मुठभेड़ होते होते बचती है। आगतुक नवयुवक की अवस्था लगभग तीस वर्ष, शरीर सुकुमार और कुछ स्थूल. आँखों में चश्मा, शरीर पर गरम सफेद फलालैन का एक कुर्त्ता और एक काश्मीरी सफेद दुशाला तथा हाथ मे एक फैंसी घडी है। अपनी धुन मे मस्त सुरेश मानो दिशा 'ज्ञान'-शून्य होकर, तेजी से चल पड़ा था, और यह नवागंतुक सज्जन अगर जल्दी से एक ओर न हट जाते तो निश्चय दोनों की टक्कर हो जाती। यह नवागतुक सीता के पति नरेन्द्र बाबू हैं]

नरेन्द्र—[कुछ हँसते हुए] हूँ, आप यो .खूब चलते हैं! पबलिक रोड पर जरा आँख से काम लेते हुए

दूसरा उपाय ही क्या है ?

ही चलना अच्छा होता है। अभी तो हम आप लड़ चुके थे।

सुरेश—[उनकी ओर बग़ैर देखे ही जल्दी से] माफ़ कीजिएगा, मै ज़रा जल्दी मे था [कह करें फिर चल पड़ता है पर नरेन्द्र उसे रोककर पूछता है]

नरेन्द्र—जरा सुनिए तो, आप यहाँ किसके पास आये थे ?

सुरेश—[अब पहली बार उनकी ओर देखता है] क्या आपही इस घर के स्वामी नरेन्द्र बाबू हैं ?

नरेन्द्र—मै कोई भी होऊँ, आप अपना मतलब तो बताइए।

सुरेश—[कुछ क्षण गौर से नरेन्द्र की मुखाकृति परखने के बाद] ख़ैर, मै जिससे मिलने आया था उन्होंने तो अच्छा ही किया कि गृहस्वामी की अनुपस्थिति मे इस आदर के साथ मुझे निकलवा बाहर किया। आख़िर धृष्टता की भी कोई सीमा होनी चाहिए न ? [क्षण भर मौन, दोनों ध्यान से एक दूसरे की मुखाकृति का अध्ययन करते हैं, फिर सुरेश एकाएक कहता है] अच्छा नमस्कार, मै चला।

[सुरेश का सवेग प्रस्थान; नरेन्द्र कुछ हकाबक्का-सा कुछ क्षण जाते हुए सुरेश की ओर देखता रह जाता है।

दूसरा उपाय ही क्या है ?

फिर धीरे-धीरे दरवाजे की ओर मुड़ता है। सामने ही अदब से खडा हुआ वह पहाड़ी दरबान और कमरे की चिक हटाकर बाहर बरामदे मे निकली हुई वही युवती दिखलाई पडती है। वह सीधे युवती के पास जाता है। युवती सचमुच सुंदरी है और वेशभूषा से काफी शिक्षिता और सस्कृता जान पड़ती है। उसकी प्रत्येक अदा से पाश्चात्य सस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है।

नरेन्द्र—[आश्चर्य और हास्य की मुद्रा से] हुँ ! अजीब आदमी जान पड़ता है। यह यहाँ किससे मिलने आये थे ?

सीता—[अहकार और रोब-मिश्रित गंभीरता से] हमसे।

नरेन्द्र—[आश्चर्य से] तुमसे ? और तुमने भले आदमी को इस तरह अपमानित करके बाहर निकलवा दिया ! उन्होने हमसे साफ यही कहा।

सीता—मैंने सुना जो कुछ उन्होंने आपसे कहा।

नरेन्द्र—आखिर मामला क्या है ? बिचारे बहुत ज्यादा ज़लील-से मालूम हो रहे थे। मै जब तक बुलाऊँ तब तक तो वह एक चलता हुआ नमस्कार उड़ा कर हवा हो गये। यह स्पष्ट था कि वह अत्यन्त मर्माहत होकर ही गये हैं।

दूसरा उपाय ही क्या है ?

सीता—[भृकुटी चढ़ जाती है और कुछ बनावटी रोब और झुँझलाहट के साथ] बात यह है कि वह हमारे बाबूजी के पडोसी हैं, बहुत पुराने। लडकपन से ही मै उन्हे भैया कहती हूँ। अम्मा उन्ही से मेरी शादी करने को तय कर चुकी थीं। पर इधर वह बहुत दिन से जाने कहाँ चले गये थे। इसी बीच मेरी शादी आपसे हो भी गई। आज आये थे मुझसे मिलने, पर ऐसी हालत मे मुझे उनसे मिलना जरा ठीक नहीं जान पड़ा। मैने दरबान से कहलवा दिया कि आप घर पर नहीं हैं। इसी से शायद अपने को अपमानित समझ कर लौट गये।

नरेन्द्र—[मतलब भरी मुस्कुराहट के साथ] पर यह सरासर तुम्हारी ज़्यादती है। आखिर जिसके साथ इतने दिनों तक घनिष्ठता रही उसे इस रुखाई से विदा करना अच्छा नहीं हुआ। अब मुझे खुद जाकर उन्हे लिवा लाना पडेगा। [कुछ सोच कर] मालूम होता है जैसे उन्हे कही देखा है।

सीता—बहुत मुमकिन है। वह टेनिस के बड़े मशहूर खिलाड़ी हैं। और एक अच्छे [चेहरे पर गुलाबी रगत दौड़ जाती है] कलावंत भी हैं।

दूसरा उपाय ही क्या है ?

नरेन्द्र—[कुछ क्षोभ से] हाँ, हाँ, ठीक है, ज़रूर कहीं देखा होगा। पर देखो तुम बिचारे के साथ बड़ी संगदिली से पेश आई। ज़रा दो मिनट बैठा कर पान-वान भेजवा देती तो कौन-सा बड़ा हर्ज हो जाता।

सीता—हर्ज कुछ भी नहीं होता, पर उन्हें तो ज़रा समझना चाहिए था कि मैं अब वही पहलेवाली बच्ची नहीं रही जब वह मुझे खूब तंग किया करते थे। उन्हें जानना चाहिए कि अब मैं पर-स्त्री हूँ। उनकी इतनी बड़ी स्पर्द्धा तो देखिए।

नरेन्द्र—अच्छा तो यह कहिए कि यह आपने उनको स्पर्द्धा की सजा दी है ?

सीता—जनाब, हर आदमी को हर हालत में अपनी स्थिति भूलनी न चाहिए।

नरेन्द्र—[फिर चुटकी लेते हुए] जो हो, पर उनको अपनी स्थिति का ज्ञान ज़रा मुलायम तरीके और ज़रा कम दिखावट के साथ भी कराया जाना संभव था, [हँसते हुए] पर जो हुआ सो हुआ, अब मैं उनसे तुम्हारी ओर से माफी माँगने और मना कर यहाँ लिवा लाने जा रहा हूँ। कहाँ रहते हैं, बताओ।

दूसरा उपाय ही क्या है ?

सीता—[जल्दी से, तमक कर] जनाब, आपको अगर उनसे दोस्ती ही गाँठना हो तो उन्हे यहाँ बुलाये बग़ैर भी आप यह कर सकते है। और अगर उन्हे यहाँ बुलाना ही हो तो मुझे पहले बाबूजी के यहाँ भेज दीजिए। [मचल कर खडी हो जाती है और गर्दन दूसरी ओर फेर कर मानों कोई खोई हुई चीज खोजने लग जाती है।]

नरेन्द्र—[इस प्रकार मीठा मुसकुराते हुए मानों वह सीता की इन हरकतों को खूब उपभोग कर रहे हैं] ख़ूब ! अरे न हो ज़रा-सा उन्हे प्यार ही कर लेती या कम से कम प्यार दिखलाने मे कौन-सा हर्ज था ! अब फिर तो उनसे तुम्हारी शादी होने की नही, फिर कम से कम जरा उनका जी ही ख़ुश कर देती।

सीता—[काफी क्रोध के भाव से] अच्छा, बस ! माफ करिए, कोई और बात हो तो कीजिए, वर्ना मै जाने को उद्यत होती हूँ। [नरेन्द्र उसे हाथ पकड़ कर रोकता है और पास बैठाकर कुछ बनावटी गम्भीरता से कहता है।]

नरेन्द्र—तुम नही जानती पवित्र प्रेम, या भाई बहन का प्रेमभाव जो कि बकौल तुम्हारे सुरेश और तुम में इतने अर्से से था, कितना पवित्र, कितना कोमल

और कितना कीमती होता है। अगर जानती होती तो इस वक्त इतना ताव न दिखलाती।

सीता – [निष्फल क्रोध से रुआँसी होकर] क्या सूझी है आज आपको ! लोगों को अपनी स्त्री से ऐसी बेढगी बातें कहते हुए शरम आनी चाहिए। पर आप की बातों मे कुछ गहरा मतलब-सा भरा हुआ मालूम होता है। [रो पड़ता है] अगर आपके मन में कोई शुबहा हो तो मुझे बाबूजी के घर भेज दीजिए... हमेशा के लिए ।]

नरेन्द्र [कुछ अप्रतिभ होकर मानो इस उत्तर के लिए वह तैयार नहीं था, क्षण भर रुककर, कुछ सोच कर गम्भीरता से] ठीक बात सुनने पर तुम लोगों को इसी तरह रोना आता है।

सीता—[उसी प्रकार] जी हाँ रहने दीजिए। ऐसी ठीक बातें आप मिहरबानी करके मुझे न सुनाया कीजिए [कह कर तेजी से कमरे के बाहर हो जाती हैं पर दरवाजे से बाहर होते ही वही दरबान एक सलाम कर सामने खड़ा हो जाता है।]

सीता—क्या है ?

सिपाही—जी वही बाबू साहब जो आपसे मिलने आये

दूसरा उपाय ही क्या है ?

थे अभी अभी यह काग़ज दे गये हैं और कह गये है कि आपको फौरन दे दूँ।

सीता—[चिट्ठी हाथ मे लेकर दबा लेती है और बिजली की तेजी से एक निगाह कमरे की ओर फेंकती है पर तुरन्त कुछ सकपका कर सिपाही से जरा धीरे मे पूछती है] क्या वह बाहर जवाब के लिए खड़े हैं ?

सिपाही—जी, वह तो फौरन चले गये, बल्कि मैने ..
[ठीक इसी समय जरा मुसकुराते हुए नरेन्द्र बाबू बाहर जाते है और सिपाही से पूछते हैं, सीता के चेहरे का रग जल्दी जल्दी बदलता जाता है, वह कुछ मना करने का एक तीव्र पर बहुत बारीक इशारा सिपाही की तरफ करती है पर वह इधर ध्यान ही नही देता, नरेन्द्र की पैनी दृष्टि से शायद यह सब छिपा नही।]

नरेन्द्र—कौन फौरन चले गये ? [सीता एक हताश-दृष्टि से सिपाही की ओर देखती है, फिर एकाएक घृणा-भरी मुस्कुराहट के साथ चिट्ठी नरेन्द्र के हाथ मे देने को बढ़ाती है, नरेन्द्र मुसकुराता हुआ चिट्ठी को एक निगाह देख लेता है पर सिपाही के उत्तर की

ओर ही मुखातिब होता है। यह सब काम क्षण भर के अन्दर ही हो जाते हैं।]

सिपाही—[कुछ डरा हुआ] जी हजूर, वही बाबू जो आपसे फाटक पर मिले थे वही, रानी साहब को देने को यह चिट्ठी दे गये [सीता के हाथ-द्वारा बढ़ाई हुई चिट्ठी की ओर इशारा करता है]

नरेन्द्र—ओ . ह!

सीता—[उसी घृणा-व्यंजक हँसी के साथ] लीजिए न, जरा हिमाकत तो देखिए। मैं तो इसे पढ़ूँगी भी नहीं। आप इसे पढ़ लीजिए और फिर मेरे सामने इसे जला डालिए।

नरेन्द्र—[उसी भाव से मुसकुराते हुए] वाह! यह खूब, तुम्हारी प्राइवेट चिट्ठी पढ़ने का मुझे क्या अधिकार? तुम इसे पढ़ो या जलाओ या चाहे जो करो मुझसे कोई मतलब नहीं। मुझे यह जानने की भी ख्वाहिश कतई नहीं होनी चाहिए कि इसमें क्या लिखा है। [जरा ज़ोर से हँस कर कमरे में घुसते घुसते] आखिर तुमने उसके साथ इतना हृदयहीन व्यवहार किया अब वह एक चिट्ठी भी न लिखे!

सीता—[साथ ही कमरे में घुसती है] तो आप नहीं पढ़ेंगे? ... अच्छा तो मैं अब इसे जलाती हूँ और

दूसरा उपाय ही क्या है ?

आप उन्हे मिहरबानी करके लिख दीजिए कि आइंदा वह फिर कभी मुझे चिट्ठी लिखने का साहस न करे। और यह भी लिखिए कि मैने बिना पढ़े ही चिट्ठी जला दी है।

नरेन्द्र—मुझे चिट्ठी लिखने का अधिकार ? [व्यग हँसी]

सीता—अच्छा मैं ही लिखूँगी पर पहले इसे जला तो दूँ। [दराज मे से दियासलाई निकालती है और जलाने ही पर होती है कि नरेन्द्र हाथ रोक लेता है]

नरेन्द्र — बस काफी हो चुका। अब आप मिहरबानी करके इसे पढ़ जाइए।

सीता—अच्छा तो आप ही पढ कर सुनाइए।

नरेन्द्र - [गम्भीरता से] अच्छा लाओ यही सही। [चिट्ठी लेकर देखता है] मालूम होता है कहीं सड़क पर से कोई काग़ज का टुकड़ा लेकर और रास्ते ही में कहीं बैठ कर लिखा है।

सीता—[चेहरे पर तीव्र उत्कठा के भाव स्पष्ट हैं] अच्छा जो हो, पढिए तो सही।

[नरेन्द्र पढ़ता है] सीता, अब तुम एक बड़े रईस की बीबी हो, तुम ताज्जुब करती होगी कि इतने स्नेह-पूर्ण स्वागत के बाद भी कोई चिट्ठी कैसे लिख सकता है। मगर दया करके ग़लत न समझना।

दूसरा उपाय ही क्या है ?

मै सिर्फ एक बात कहने गया था—सिर्फ एक; प्रेम करने या पाने की इच्छा या आशा से नहीं। तुम अब रानी हो। वह दिन और थे जब मैं तुम्हे 'सित्ती' कह कर पुकारता था और तुम आवाज सुनते ही दौड आती थी। खैर जाने दो इन बातों को। इन बातों को छेडते ही बहुत बाते याद आ जायँगी। अब मुझे इन सम्बोधनों का कोई अधिकार नहीं। बहुत सभव है मेरे जीवन-संबधी सभी बाते अब अर्थशून्य होंगी—पर एकमात्र स्मृति मेरा सबल होगी। वह रहेगी। पर मुझे तुम्हारे घर तक अपनी उस यात्रा और उसके विफल होने पर इस पत्र-लेखन के कारण की ओर आना चाहिए। श्रीमतीजी! शायद आपको याद हो आपको मैंने अपनी एक तसवीर दी थी, आज मै उसे लौटा लेना चाहता हूँ। क्यो लौटा लेना चाहता हूँ। यह जान कर आपको कोई लाभ नहीं होगा। आशा है आप लौटा देंगी। इति।

[नरेन्द्र कुछ क्षण के लिए गहरी चिन्ता में डूब जाता है। धीरे-धीरे उसकी आँखें भर आती हैं और फिर वह धीरे ही धीरे उन भरी आँखों को सीता की ओर उठाता है और यह देख कर कि सीता की हालत किसी शरविद्ध हिंस्र पशु की-सी हो रही है उसकी भरी

दूसरा उपाय ही क्या है ?

आँखे किञ्चित् और भी विस्फारित हो जाती हैं और दो बड़ी बड़ी बूँदे उसके मासल कपोलों पर ढुलक पडती हैं। फिर धीरे-धीरे जड़ित स्वर मे कहता है] हाय पुरुषहृदय !

सीता—[आहत सिहिनी की भाँति] जी हाँ, यही आप लोगों का पुरुषहृदय है! किसी ओर से भी तो रत्ता नहीं है। स्त्री की मर्यादा भी तो कोई चीज है।

नरेन्द्र—[स्वस्थ होकर दृढ स्वर से]- इन सब बातों में सुरेश बाबू का कोई अपराध ढूँढ़ निकालना कम से कम मेरे लिए असम्भव है। ऐसी परिस्थिति में वह ऐसा न करते तभी मुझे आश्चर्य होता और फिर चिट्ठी से उनकी उदारता स्पष्ट है। इतने अपमान के बाद भी तुम्हे चिट्ठी लिखना अत्यन्त सहनशील और क्षमावान पुरुषहृदय का ही काम है।

सीता—[मर्माहत की भाँति छटपटा कर] क्या आप को कोई और काम नहीं है? इस चिट्ठी के गुण-दोष की विवेचना करने की प्रार्थना आपसे कौन कर रहा है?

नरेन्द्र—[क्षुब्ध होकर] देखो! यह मत भूलना कि स्त्री के अन्याय का विचार करने का अधिकार पति को होता है। तुम्हीं ने न हम से अभी अभी बताया है कि

दूसरा उपाय ही क्या है ?

सुरेश बाबू से तुम्हारी शादी पक्की हो चुकी थी, और यह तुम्हारे बहुत पुराने पड़ोसी हैं और तुम इन्हे भैया कह कर पुकारा करती थीं। ऐसी अवस्था में सुरेश बाबू का तुम से प्रेम करना स्वाभाविक ही नहीं वरन सर्वथा उचित है।

सीता—ओह,—तो आप मुझे सदेह करते हैं!

नरेन्द्र—[उच्च स्वर मे हृदयविदारक सूखी हँसी हँसने के बाद क्रमशः अत्यंत गभीर होकर] सदेह नहीं, यदि पहले जानता तो तुम्हारे साथ विवाह ही न करता।

सीता—[एकदम सन्नाटे मे आकर, कुर्सी पर गिर-सी पड़ती है, फिर क्रमशः रोने की बारी आती है और बाष्पपूर्ण स्वर से कहती है] आखिर को यही होना था . . आप मुझे बाबूजी के यहा [बलपूर्वक आँसू रोक कर और आचल से मुँह पोछ, स्वर परिष्कार कर, धीमे पर दृढ कठ से] भेज दीजिए। यदि आपके मन का यही भाव है तो मेरा यहाँ क्षण भर भी रहना अन्याय है। मेरे हृदय का दुख-सुख मुझ तक ही रहेगा, वह कभी किसी के सामने प्रकट नहीं हो सकेगा। [यह कह कर उठ कर चलने को ही थी पर नरेन्द्र बाबू लपक कर उसे थाम

दूसरा उपाय ही क्या है ?

लेते हैं और पास बैठते हुए बडे स्नेह और अनुकम्पा के स्वर मे कहते हैं]

नरेन्द्र—नहीं ! नही ! ऐसा नही। बे समझे बूझे इतना बड़ा अपराध हमारे सिर न मढो। आखिर तुम्हारे निकट हमारे प्रेम का भी तो कोई मूल्य होना चाहिए।

सीता—मुझे किसी से कुछ शिकायत नहीं है पर तबीअत बदल आने दीजिए।

नरेन्द्र—[आदर से] अच्छा चलो, हम दोनों ही कलकत्ते घूम आवे।

सीता—नही, बाबूजी के यहाँ मुझे आज ही भेज दीजिए, और कोई उपाय नहीं है।

नरेन्द्र—[गम्भीर स्वर से] अच्छा ऐसा ही होगा। वर्तमान स्त्री-समाज के प्राणियों के लिए इसके सिवा और दूसरा उपाय हो ही क्या सकता है ?

[सीता प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखती है। पर वह एक परम कारुणिक मुस्कुराहट के साथ उठ कर दूसरी ओर देखने लगता है। परदा गिरता है।]

हुए नजर आ रहे है। हवा जरा तेज ही चल रही है। निर्मला की उम्र बीस या बाइस से अधिक न होगी। उसका केश-पाश अस्त-व्यस्त-सा उसकी पीठ पर हवा में हलकी हिलोरे-सी ले रहा है। पीछे से युवक प्रेम सीढ़ियो से धीरे-धीरे नीचे उतरता दिखाई पड़ता है पर इससे निर्मला का ध्यान नही भग होता। प्रेम एक सफेद पजाबी चुना हुआ कुर्त्ता और चुनी हुई बगाली ढग की धोती पहने है। शरीर से ज़रा कृश पर काफी सुगठित जान पडता है।]

प्रेम—मै आ सकता हूँ ?

निर्मला—आओ।

प्रेम—[दो सीढी ऊपर बैठते हुए] आज तो आप किसी गहरी चिन्ता मे लीन मालूम हो रही हैं। बात क्या है ? मेरा अभिवादन तो स्वीकार हो।

निर्मला—यह क्या प्रेम भैया, इतनी दूर क्यो बैठे ? पास आओ।

प्रेम—[जेब से एक सुन्दर राखी निकाल कर निर्मला की कलाई में बड़े आदर से बाँधता हुआ] पास अगर मेरे लिए जगह होगी तो फिर कभी बैठूँगा, अभी यह रसम तो पूरी होने दो।

निर्मला—यह क्या ?

प्रेम—अरे तुम्हे यह भी नही पता, आज रक्षा-बन्धन है। भाई-बहन का सबसे बड़ा त्योहार यही है।

निर्मला—ओ—ह!

प्रेम—जी आपको इतनी भी खबर नहीं। यह पावस ऋतु है। कुछ कवियो ने इसी को ऋतुराज माना है। तुम्हारी वनलक्ष्मी का जो रूप इस ऋतु मे होता है वह शायद और कभी नहीं।

निर्मला—अच्छा रहने भी दो। तुम्हारी शायराना बातों का जवाब कौन दे सकता है।

प्रेम—इसकी ज़रूरत भी नही है, जानती हो बातें पुरुष ही किया करते हैं। तुम लोग अगर प्रेम से चुपचाप सुन लो, बस जवाब हो गया।

निर्मला—अच्छा! अब आप बहुत गहरे जाने लगे। [कुछ रुककर] अच्छा प्रेम भैया, मरने की कोई अच्छी-सी तदबीर बता सकते हो?

प्रेम—क्या कहा! यह सूझ तो अच्छी है इस मौके पर।

निर्मला—नहीं, मज़ाक की बात नहीं, मै सचमुच जानना चाहती हूँ।

प्रेम—क्या खूब! यह भी कोई पूछने की बात है! आजकल तो लोग कभी न मरने और सदा जवान रहने का ही उपाय ढूँढ़ते फिरते हैं।

निर्मला—[अन्यमनस्क होकर] जाने दीजिए, आपसे कुछ पूछना बेकार है।

प्रेम—[ज़रा गभीर होकर] अपना मतलब ज़रा समझा कर कहो।

निर्मला—अगर आज विनोद भैया का मुँह देखे होते तो यह सवाल न करते।

प्रेम—[कुछ चिंता से] देखा है। उन्ही के पास से तो आ रहा हूँ। कुछ तो मुझे सदेह हुआ है। पर बात क्या है ज़रा बताओ तो।

निर्मला—इधर कुछ दिनो से विनोद भैया बिलकुल बदलते जा रहे हैं। किसी कामकाज मे उनका जी नही लगता। आज मै अपने कमरे में बैठी एक मासिक पत्र के पन्ने उलट रही थी। इसी वक्त आकर वे मुझे रोज पौदो मे पानी देने और फूलो की सेवा का काम करने के लिए लिवा ले जाते थे। मै उनका इतजार ही कर रही थी। पर वे जिस तरह से रोज़ दौड़े दौड़े आते थे उस तरह से आये नही। आते ही चुपचाप एक कुरसी पर बैठ गये, पूछने लगे क्या पढ रही हो। मैने उनके हाथ मे वह मासिक पत्र रख दिया। कुछ देर तक वे उसके पन्ने चुपचाप उलटते गये। बीच बीच में मेरी ओर इस तरह देखते थे

मानो कुछ कहना चाहते हो। पर रुककर फिर पन्ने उलटने लगते थे। आखीर को वह पत्र मेज पर फेंककर खड़े हो गये। मैने कहा, आज बाग़ में पानी देने न चलोगे। उन्होने कहा, नही, आज मुझे काम से जाना है।

प्रेम—आखीर वह तुमसे क्या कहना चाहते थे इसका तुम्हे कुछ अंदाजा है।

निर्मला—तुम सब समझते हो प्रेम भैया। तुमसे हमारी कोई बात छिपी नही है। मै छः बरस से ज़्यादा की नही थी जबसे हम और विनोद भैया साथ रहते हैं। मेरे बगैर उनका कोई काम ही नही ठीक होता। न तो वह इन ग़रीबो [फूलों के गमलों और क्यारियों की ओर इशारा करते हुए] की ही देख-रेख कर सकते हैं अकेले, न अपने तन-बदन की ही फ़िकर कर सकते हैं। जब से मेरी माँ और चाची का देहात हुआ तब से चाचाजी ने बग़ीचे का सारा काम मेरे ही ऊपर छोड़ दिया। जानते तो हो तुम सब—

प्रेम—कहे चलो। आज सब फिर नया-सा मालूम पड़ रहा है।

निर्मला—इसी बीच चाचाजी ने विनोद भैया को बड़े प्रेम से यहाँ रक्खा और हम लोग भाई-बहन नहीं बल्कि

भाई भाई ही की भाँति बड़े हुए। अब चाचाजी भी नही हैं। चलते वक्त वे यही कह गये कि इन फूलों और पौधों को हम तुम्ही दोनो पर छोडे जाते हैं। भाभी पर उन्हे भरोसा नही था। वे मुझे और विनोद भैया को दो साथी समझते थे। इसके बाद से —

प्रेम—कह डालो, रुको मत।

निर्मला—तुम सब जानते तो हो, तुमसे क्या छिपाना। मैने पहले पहल जब भाभी की निगाहे अपने ऊपर बदलती हुई देखी तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। पल भर में वह सब बाते न जाने कहाँ लोप हो गई। किसी ने मानो एक प्रबल आघात से मुझे बता दिया कि विनोद बाबू मेरे आश्रित नही मै ही उनकी आश्रिता हूँ। और तुम्हे मालूम है मरते समय चाचाजी की एकमात्र विधवा बहन अपने इकलौते बेटे—इन्ही विनोद भैया का भार चाचाजी को सौप गई थी। इस आघात ने मुझे पहली बार यह बतला दिया कि अब मैं सयानी हो गई हूँ, और मै स्त्री हूँ, विनोद भैया पुरुष, और एक दूसरी स्त्री के पति हैं।

प्रेम—दूसरे शब्दो मे इस धक्के ने तुम्हारे इस सोये हुए प्रेम को जगा दिया।

निर्मला—इसमें मेरा बस ही क्या है ? अपने को कब तक धोखे में रक्खा जा सकता है। [प्रेम कुछ सोचता रह जाता है]

निर्मला—[कुछ रुककर] अब बताओ, तुम कुछ कहते क्यो नही। मेरा यहाँ रहना भाभी के साथ अन्याय करना होगा।

प्रेम—मै यह सब लोकाचार की बाते जरा कम समझता हूँ। भाभी तो अब आई हैं। पहले तो भाभी नहीं थी, तुम थी।

निर्मला—यह क्या कहते हो प्रेम भैया ! विनोद भैया का भी खयाल रखना होगा।

प्रेम—अच्छा तो आप समझती हैं इस आघात का असर सिर्फ आप ही पर हुआ है, और विनोद भैया वही हैं जो पहले थे !

[पीछे से एक पचीस छब्बीस वर्ष के युवक का प्रवेश। युवक का हृष्ट-पुष्ट शरीर उसका प्रशस्त ललाट और वक्षस्थल तथा बडा डील-डौल उसके असाधारण व्यक्तित्व की सूचना देते हैं।]

युवक—[पीछे से] प्रेम है क्या यहाँ ? [निर्मला उठकर खड़ी हो जाती है]

प्रेम—हाँ विनोद भैया।

विनोद—जो हो तुम्हे तुम्हारी भाभी याद कर रही हैं। दाई अभी इधर तुम्हे बुलाने ही आ रही थी। [प्रेम का प्रस्थान, निर्मला भी जाने को होती है]

विनोद—[भर्राई आवाज से] निर्मला तुम कहाँ जा रही हो ! जरा ठहरो, तुमसे कुछ कहना है।

निर्मला—[अति कष्ट से] कहो।

विनोद—निर्मला ! क्या यह अदृष्ट को मजूर नहीं था कि हमारी और तुम्हारी जीवन-नौका एक साथ चले जाने देता। आज वायुमडल मे कुछ ऐसी उथल-पुथल मच गई है जिससे दोनों नावे एक दूसरे से दूर होती जा रही है। दोनो के यात्री एक दूसरे को दूर से ही इस तरह देख रहे हैं मानो आज ही उन्हे मालूम हुआ हो कि कोई शक्ति उनके चिर सहवास में बाधा भी डाल सकती है। यह झोका जितना आकस्मिक है उतना ही असह्य-सा मालूम हो रहा है। क्या तुम इसे सह सकोगी नीरू ?

निर्मला—सहना ही पडेगा।

विनोद—मगर . . . [कुछ सोचकर] क्या बात क्या है ? अच्छा क्या यह सच है कि स्त्रियो की सहन-शक्ति हम लोगो से अधिक होती है ?

निर्मला—अधिक और कम का सवाल थोड़े ही है। बात यह है। मर्द के लिए सहन करने के सिवा और भी उपाय हैं, पर हम लोगो की वही एक गति है।

विनोद—[सन्नाटे मे आकर फिर यकायक उत्तेजित हो] अच्छा नीरू, मै तो पुरुष हूँ, मेरे पास सहन करने के सिवा और कई उपाय हैं। मै लड़ूँगा, दैव से तुम्हारे लिए लडाई करूँगा। जरा देखूँगा वह कौन-सी शक्ति है जो तुम्हे हमसे अलग कर ले जाती है। [बद्धमुष्टि हो विस्फारित नेत्र से शून्य की ओर टकटकी लगा लेता है]

विनोद—कुछ देर रुक कर फिर जरा शान्त हो] मगर तुम सब कुछ बर्दाश्त कर लोगी मुझे मालूम है, [जरा स्मृति-सूचक मुस्कान के साथ] तुम्हे याद है एक बार तुम्हे चिढ़ाने के लिए सोते वक्त कैंची से मैने तुम्हारे बाल काट लिये थे, वही लम्बे बाल जिन पर तुम्हे बड़ा नाज था। मगर तुम तुरन्त चौककर खड़ी होगई। तुम्हारी काली आँखे उस वक्त और भी काली हो गई थी। 'तुमने सोचा होगा अच्छा छकाया' यह कहती हुई लपक कर छीन ली कैंची तुमने मेरे हाथ से, और गर्दन तक अपने बाल कतर डाले। मै देखता ही रह गया। सयोग से मामाजी

भी पहुँच गये उसी समय। उन्होंने कहा 'यह क्या!' तुमने बड़े सहज भाव से ही कह दिया 'बड़ी गरमी लगती थी'। उन्होने भी जरा मुस्कुरा भर दिया। न कुछ पूछा न कहा; सिर्फ चुपचाप कैंची लेकर तुम्हारे बाल बराबर कर दिये। तुम्हारे ही चाचा न थे वह!

निर्मला—अच्छा तो आपने समझा यह मैंने अपनी क्षमा का परिचय दिया था। धन्य है आपकी बुद्धि को! यह नही मालूम कि असल में हमी ने तुम्हे छकाया था।

विनोद—बिलकुल ठीक! दूसरे दिन लज्जा के बोझ से मै मरा-सा जा रहा था। कमरे से बाहर नही निकलते बनता था। तुम दौड़ती हुई वसत-लक्ष्मी-सी आकर मुझे बगीचे मे घसीट ले गईं। और एक बात याद है? वह जो चेत के महीने में सुबह की रात असमय आँधी आई थी और मेरे सोने-वाले बरामदे की [निर्मला विनोद के मुँह पर हाथ रख कर 'चुप' 'चुप' कहती है, पर विनोद प्रेम से उसका हाथ पकड़ कर हटा देता है और अस्फुट स्वर से कहे जाता है] छाजन उड़ चली थी. और तुमने . . . आकर

निर्मला—अच्छा न मानोगे [कह कर भाग खडी होती है]

विनोद—[अच्छा न कहूँगा—पर सुनो तो [कह कर व्याकुलता से दौड़ कर उसे पकड़ लेता है] नहीं भागो मत ! अभी मत जाओ ! जब जाने का समय आवेगा तभी [कठोर और गम्भीर हो] मगर कभी भी तुम क्यो जाओ मेरे पास से ? इसकी वजह ही क्या हो सकती है, नही ऐसा नही होगा। किसी का क्या बिगाड़ा है हम और तुमने ! जलन . . ईर्ष्या मगर क्यो ?

निर्मला—ऐसा क्यो कहते हो विनोद भैया ! क्या ईर्ष्या का कोई कारण नही दिया हम लोगो ने। अपने को भूल न जाना चाहिए।

विनोद—नीरु ! यह सब हम कुछ नही समझते, हम सिर्फ इतना जानते है कि जीवित रहते ससार की कोई शक्ति अब तुमको हमसे अलग नही कर सकती।

निर्मला—विनोद भैया ! इतने उत्तेजित न हो। भाभी का स्वास्थ्य दिन पर दिन क्षीण ही होता जा रहा है जब से बच्चा हुआ है। ऐसी अवस्था मे अपना धर्म तुम

स्वय समझ सकते हो। रह गई मैं। सो तुम मेरी चिन्ता छोड़ दो। मेरा कर्तव्य निश्चित है।

विनोद—[दृढता से] यह सब मै कुछ नही जानता। मैं सिर्फ़ इतना जानता हूँ कि तुमको हमसे अलग कोई नही कर सकता।

निर्मला—मुझे कमजोर न बनाओ विनोद भैया! तुम्हारे पॉव पड़ती हूँ। अपने नवजात शिशु का भी जरा खयाल रखना।

विनोद—निर्मला तुम क्यो बार-बार बीबी-बच्चे की याद दिला रही हो? तुम जानती हो हमारे कथन का सारा प्राण इनका नाम लेते ही नष्ट हो जायगा, मगर नही। हम दोनो ने जब मामाजी की गोद में ससार-यात्रा आरम्भ की थी तब तो किसी को कुछ न सूझा। अब ऐसी कौन-सी परिस्थिति है जो हमारे-तुम्हारे इस लगभग बीस बरस के इतिहास को मिथ्या कर सकती है। पॉच बरस का भ्रम बीस बरस के सत्य को धक्का देकर मिथ्या नही कर सकता।

निर्मला—विनोद भैया! यह तुम आज क्या बक रहे हो! तुम्हे क्या हो गया है। क्या मेरे उद्धार के सभी रास्ते तुम बन्द कर देना चाहते हो?

विनोद—उद्धार ! उद्धार काहे से ? उद्धार का यदि कोई मार्ग हो भी तो मै अब उसे बन्द कर दूँगा। प्यार करता हूँ तुमको। यह सहज सत्य आज बीस बरस से भूगर्भस्थित-सा था। आज ठोकर खाकर प्रस्फुटित हो उठा है। इसको पैर से कुचल कर फिर से दबा देना पाप होगा, अधर्म होगा—

निर्मला—[विनोद का मुँह बन्द करते हुए] चुप चुप बस बहुत हुआ। अब मुझे क्षमा करो, अभी मुझे जाने दो।

विनोद—[अत्यन्त उत्तेजित स्वर से]—क्षमा करूँ—कौन—मै ? और तुम्हे क्षमा करूँ। नीरू क्षमा का पात्र मै हूँ और जीवन की अंतिम घड़ी तक रहूँगा। मै क्यो अधा होगया था। मैंने अपने प्रेम को पहचाना क्यो नही। मैंने अपना विवाह होने दिया। तुमने तो अपना नही होने दिया, कितने एक पात्र आये और गये। मै कहाँ भूला था, कहाँ सोया था !

निर्मला—मगर मुझे तो चाचाजी बगीचे का काम सौप गये थे, मै विवाह कैसे करती।

विनोद—बस ! बस ! तुम खूब जानती हो, तुमने क्यों नही विवाह किया। तुम्हारे हृदय का सत्य तुम्हारे

सारे अंतस्तल को हर घड़ी प्रकाशमान रखता था। तुम्हारा सारा अस्तित्व ही वही था, तुम चाहे उसे जानती रही हो या नहीं। तुमने हमें क्यों नहीं सचेत कर दिया नीरू? हम लोगों का मार्ग क्यों जुदा होने दिया।

निर्मला—[गंभीर होकर] बस—बस— अब जो सामने है वह तो किसी के मान का नहीं। वह तो सत्य है और उसके लिए अब हाय हाय क्यों करते हो? क्या होगा व्यर्थ छटपटाने से?

विनोद—यह सब ठीक है मगर इसे सत्य न कहो यह भ्रम था, सत्य ने अब अपने आपको दिखाया है।

निर्मला—अच्छा, अच्छा, अब शांत हो, कल कोई मार्ग ढूँढ कर स्थिर किया जायगा।

विनोद—[कुछ शांत होकर लाल पारिजात फूलों की एक माला निकालता है] अच्छा नीरू ऐसी चाँदनी रात में तुम्हें यों ही नहीं जाने दूँगा। तुम्हारे पास एक ऐसी चीज रक्खे जाता हूँ जिससे तुम हमारी ही होकर रहोगी। [बड़े प्यार से धीरे धीरे निर्मला की चोटी को बाँध देता है और उसमें वही माला पहना देता है। निर्मला कोई आपत्ति नहीं करती। फिर

सामने खड़ा होकर एकटक निर्मला का मुँह ताकने लगता है। पूर्णचद्र ठीक निर्मला के मुँह के सामने है] निर्मला तुम तुम···अद्‌भुत हो [निर्मला एक हलकी-सी किलकारी के साथ हँसकर क्षिप्रगति से बारबार पीछे की ओर देखती हुई भाग खड़ी होती है। विनोद एकटक क्या—मुग्ध-सा—देखता ही रह जाता है, पीछा नहीं करता]

द्वितीय दृश्य

[एक बड़ा शयनकक्ष। कमरे में सिर्फ़ एक हरे बल्ब की बिजली की बत्ती जल रही है और वह भी बहुत धीमी है, चाँद की रोशनी की तरह। बीच में एक बड़ा-सा पलँग है जिस पर एक तेईस चौबीस वर्ष की स्त्री तकियो के सहारे आधी लेटी आधी बैठी है; हाथ मे एक चिट्ठी है। देखने से स्त्री बहुत निर्बल और खिन्न मालूम होती है। बगल मे एक ओर आर्मचेयर पर प्रेम बैठा है। सिरहाने से जरा दूर एक छोटे टेबिल पर कुछ दवाइयाँ, बोतल और जग आदि रक्खे हैं। बीचोंबीच ताजे ख़ुशरग फूलों का एक बड़ा-सा गुच्छा रक्खा हुआ है। यह विनोद बाबू की स्त्री उमादेवी हैं]

उमा—प्रेम तुम कहाँ ! निर्मला के पास से आ रहे हो ?

प्रेम—हाँ भाभीजी, अभी वहीं से भैया ने भेजा है आपके पास।

उमा—वह अभी उसी के पास हैं क्या ?

प्रेम—हाँ।

उमा—[ईषत् आवेश के साथ] अच्छा यह चिट्ठी ज़रा हमको पढ़कर सुनाओ। मुझे डाक्टर ने पढने से मना कर दिया है। इसी लिए तुमको बुलाया।

प्रेम—यह चिट्ठी है किसकी ?

उमा—तुम्हारे भैया की। न मालूम क्यों हमसे रूठ गये हैं। यह चिट्ठी लिख कर भिजवा दी है। खुद तो आज आये भी नहीं।

प्रेम—[चिट्ठी लेकर पढ़ता है]—

इतने दिन के परिचय के बाद भी हमारे ऊपर संदेह करना तुम्हारे लिए संभव हुआ। इस बात को लेकर कुछ कहना व्यर्थ है। यह भी समझा कि निर्मला को यहाँ से बिदा कर दूँ यही तुम्हारी इच्छा है। शायद यही होगा। पर तुम्हे यह मालूम होना चाहिए कि मै आज जो कुछ हूँ वह स्वर्गीय मामा साहब की ही कृपा का फल है।

मैं यह सत्य भूला बैठा था कि निर्मला के ही आश्रित हम लोग हैं, पर तुमने आज उस सत्य को हम

पर प्रकट कर दिया। हम लोग उससे कभी भी उऋण नहीं हो सकेंगे। तुम्हारे सपर्क में, भविष्य में वह न आवे यह मैं देखूँगा। पर मेरे साथ उसका सम्बन्ध अटूट है यह बात भी तुम्ही ने मुझे समझा दी। सब बातें नहीं कह सकता; वह सब भाषा से परे है। यदि तुम इतने से न समझो तो जीवन की मेरी यह पहली वेदना तुम्हारे नगीच अव्यक्त ही रह जायगी।

[चिट्ठी सुनते ही सुनते उमा सिसकियाँ भर कर रोने लगती है और अंत मे हतप्राण-सी होकर शय्या पर लोट पड़ती है और सिर धुन कर रोने लगती है और प्रेम सन्नाटे में आकर गहरी चिन्ता में पड़ जाता है]

उमा—कुछ कहो प्रेम भैया यह क्या हो गया ? मेरा तो सर्वस्व लुट गया। [प्रेम अब भी चुप है]

उमा—तुम कुछ कहते क्यों नहीं प्रेम बाबू। यह मैंने क्या किया—आ—आ—हाय भगवान्! क्या कोई भी मेरी वेदना समझने वाला नहीं रहा!

प्रेम—शात हो भाभीजी। तुम्हारा शरीर कितना निर्मल है। मन बिगाड़कर अपना शरीर इस तरह क्यों नष्ट कर रही हो।

उमा—हो जाय शरीर नष्ट! अब इसे लेकर क्या करना है! किसके लिए। मुझी पर इतना अविश्वास।

वही उनकी उमा आज कहाँ है? उसके हरे-भरे बाग़ को किसने एक झटके में उजाड़ डाला? मुझे कितने नामों से पुकारते थे वे! उनकी 'वनलक्ष्मी' आज कहाँ गई? काम करके जब बाहर से लौटते थे मै भोजन परसे उनकी राह देखा करती थी तो मुझे 'अन्नपूर्णा' कहते थे! शाम को जब वे तलैया की सीढ़ी पर बैठते थे तब मै तश्तरी में फूलो के बीच पान सजा कर उनके पास ले जाती थी और तब जानते हो मुझे क्या कहते थे—'तांबूलकरंकवाहिनी'! वह सब स्नेह का समुद्र पल भर में कैसे सूख गया प्रेम बाबू बता सकते हो?

प्रेम—भाभीजी! तुम स्वस्थ हो। तुम्हारा आसन तुमसे कोई नही छीन सकेगा।

उमा—झूठी आशा क्यो देते तो प्रेम भैया। अब मै कै घड़ी की मेहमान हूँ। डाक्टर जो कहते हैं उसकी भनक मेरे कान मे भी आ जाती है। यही सब सुनकर और भी ससार छोड़कर जाने को जी नहीं चाहता।

प्रेम—इसकी ज़रूरत ही क्या है भाभीजी। इतने ही दिन जो सोहाग तुमने पाया है वैसा कितनी सुहागिनों को मिला है। तुमने जैसा प्रेम दिया वैसा ही

पाया है। डाक्टर की बात यदि सच ही हो तो जिसको बड़ा करके पाया उसे बड़ा ही छोड़ जाना। इतने दिन जिस गौरव से निभाया है उसे छोटा न कर जाना चला चली की बेर।

उमा—[एक छोटी बच्ची की भाँति फिर से पुक्का फाड़कर रो लेने के बाद] ठीक कहते हो प्रेम बाबू। मै अपने इतने दिन के सोहाग को हँसती हँसती छोड़ जाती। पर कहीं तिल भर भी जगह न होगी जहाँ मेरी स्मृति का दीप टिमटिमाकर भी जलेगा। वह निर्मला सब पर दखल कर लेगी, पूरपार। क्या यही मेरे सर्वस्व-समर्पण का फल होना है? यही विधना का विचार है?

प्रेम—[दृढता से] एक सच बात कहूँगा भाभीजी, नाराज़ मत होना! जो तुम स्वय उपभोग नहीं कर सकतीं उसे प्रसन्नचित्त से दान नहीं कर सकती यह कैसी बात है। और यह दान किसके लिए करोगी – वही, जिसको सब कुछ तुम देती आई हो इतने दिन तक? इससे तुम्हारे महान् उज्ज्वल प्रेम में एक धब्बा-सा लग जायगा। अपनी पुण्यस्मृति का स्वच्छ प्रदीप तुम अपने ही हाथो चूरमार मत करती जाना। तुम तो चली जाओगी, पर अपने विशाल हृदय को

अंतिम घड़ी संकुचित मत कर लेना—यही मेरी विनती है।

उमा—[सिसकती हुई] प्रेम बाबू! तुम महान् हो! मैं दुर्बल हूँ। अन्याय भी किया है मैंने। मुझसे तुम कैसे इतनी बड़ी बात की आशा करते हो। फिर भी तुम्हारी ही महत्ता मुझे बल देगी अच्छा प्रेम बाबू, मेरी एक बात मानोगे?

प्रेम—[पूरा उमा को देखते हुए] हुक्म दो भाभीजी।

उमा—मुझमें एक कमजोरी है। जब हृदय के आँसू भी सूख जाते हैं तब मैं ठाकुरजी की मूर्ति को देखने लगती हूँ। उनकी मूकवाणी हृदय तक पहुँचती है और उसको बल देती है। तुम जैसे हो सके इस समय मुझे ठाकुरद्वारे तक ले चलो। इससे मेरे हृदय को बल मिलेगा।

प्रेम—भाभीजी! तुम जानती हो मुझे लोग नास्तिक कहते हैं। तो भी मुझे ले चलने में कोई आपत्ति नही है। पर इससे कुछ लाभ न होगा।

उमा—प्रेम बाबू तुम्हारे मन में बहुत बल है, तुम को किसी गुरु या देवी-देवता का सहारा लेने की जरूरत नहीं है। पर तुम हमारी विपदा को किसी तरह समझ ही नही रहे हो। जितना ही मैं जोर कर सँभलने की

कोशिश करती हूँ उतना ही मानों और अगाध कीचड़ में धँसती चली जा रही हूँ।

प्रेम—भाभीजी! यह सब जाने दो। मेरी एक बात सुनो। बल सबके मन मे उतना ही होता है। यह केवल उस बल से काम लेने या न लेने की इच्छा पर ही करता है निर्भर। यों ठाकुरद्वारे या गुरु की शरण जाकर मिलेगी नहीं शाति। एक बार दोनो हाथ से कलेजा थाम कर कह दो—'दिया हमने'! सबसे जो बहुमूल्य है वही दिया उसको जिसको प्यार किया सबसे अधिक। बस उसी घड़ी हृदय होगा हलका। आनन्द-विभोर हो उठेगा मन। काम नहीं है देवी-देवता का। कहो, कहो, अभी कहो—दिया—सब कुछ—अपना सर्वस्व उन्हे दिया, कुछ भी नहीं रक्खा हाथ में, अब निर्मुक्त होकर चली ससार से, बस—

उमा—[दृढ होकर] अच्छा यही होगा प्रेम! तुम बुलाओ निर्मला और उनको।

प्रेम—नहीं, अभी वह समय नहीं आया है। इतनी जल्दी न करो। कहता हूँ समय आने दो, पक्का कर लो ख़ूब अपने मन को।

उमा—[दृढ़ता से] मत करो कोई संदेह प्रेम ! देखो वह इधर ही आ रहे हैं [विनोद का प्रवेश] उमा आवेश में आकर पलॅग से दौड़कर विनोद के पैरो से लिपट जाती है, विनोद बड़े प्यार से उसे सॅभाल कर पलॅग पर बैठा देता है और इसके आँसू पोंछता है । प्रेम बाहर चला जाता है]

उमा—[खिसकती हुई विनोद की छाती मे सिर छिपाकर] मुझे माफ़ कर दो—मुझे—मैंने बड़ा अन्याय किया है । मगर तुम नहीं थे ऐसे निठुर—तुम क्यों इतने नाराज़ हो गये [विनोद का हाथ खीच कर अपनी छाती में दबाकर] बोलो—बोलो तुम नाराज़ नहीं हो । नहीं तो उस लोक में भी शाति नहीं मिलेगी मुझे । कहो कहो, तुम कुछ नहीं कहोगे अब ?

विनोद—तुम तो जानती हो उमा, मैं तुमसे नाराज़ नहीं हो सकता । तुमसे मतभेद भले हो मगर इसकी वजह से कभी दिल टूटा है हमारा । तुम शात हो ।

उमा—अच्छा तो आये क्यों नहीं आज दिन भर यहाँ ?

विनोद—उमा मुझसे भूल हुई है [उसके चिबुक को दोनो हाथो में उठाकर] माफ़ करना होगा तुम्हे !

उमा—[लज्जा और हर्ष से गद्‌गद होकर] कब तुम क्या कहोगे इसका कुछ ठीक नहीं । कभी रुलाते हो,

कभी हँसाते हो। अच्छा निर्मला कहाँ है बुलाओ। मैंने प्रेम से उसे लिवा लाने कहा था, अभी आई नहीं।

विनोद—[जरा अन्यमनस्क] अब इस वक़्त रहने दो, रात हो चली है।

उमा—नही, दोनो बाहर हैं, मै बुलाती हूँ, निर्मला और प्रेम! तुम लोग अदर आओ।

[निर्मला और प्रेम का एक साथ प्रवेश। उमा निर्मला को बडे प्रेम से अपने बग़ल पलॅंग पर बैठाती है। निर्मला पैर छूकर प्रणाम करती है। विनोद सकते की हालत मे अलग बैठ जाता है कुर्सी पर, प्रेम एक ओर खड़ा रहता है। कुछ देर सब चुप रहते हैं। धीरे-धीरे उमा तकिये के नीचे से एक गहने का केस निकालती और उसमे से एक बहुमूल्य चपाकली निकाल कर छलछलाई आँखो कुछ देर हार, कुछ देर निर्मला के मुँह की ओर देखती रहती है, फिर धीरे-धीरे बड़े प्यार से वह हार निर्मला को पहना कर उसके गले लग उसके दोनो गाल बड़ी आतुरता से चूम लेती है। निर्मला बराबर निर्विकार चित्त से ही बैठी रह जाती है। उमा फिर धीरे-धीरे कहती है]

उमा—एक दिन सोचा था चिता पर जब मेरा दाह होगा उस समय मेरे गले में यह चंपाकली रहेगी। पर उससे अब मैं यही अच्छा समझती हूँ।

निर्मला—[बडे कष्ट से] भाभी मैं इसके अयोग्य हूँ, मुझे क्यो लजवाती हो?

विनोद—[अति कष्ट से] निर्मला यह माला मुझे दे दो। उसका मूल्य सबसे अधिक मेरे नगीच है।

उमा—हे भगवान्। क्या इतने पर भी मेरे मन की बात कोई नहीं समझेगा? निर्मला! मै तुम्हे यहाँ से किसी तरह जाने न दूँगी। संसार मे मेरा जो कुछ है उसी के साथ तुम्हे बाँध दूँगी। यह हार उसी बधन का चिह्न है। इससे मै शाति से मर सकूँगी।

निर्मला—[यकायक खड़े होकर माला उतारती हुई] तुम भूलती हो भाभी, मुझे किसी के साथ बाँधने की इच्छा न करना [माला उतार कर उमा के पैरों पर रखती हुई] अबके पहले मेरा भरोसा किया जा सकता था पर अब मेरा विश्वास न करना। दैव ने जिससे हमको वञ्चित रखना उचित समझा है वह मैं दूसरे को धोखा देकर न लूँगी। मेरा प्रणाम स्वीकार हो! [निर्मला का सवेग प्रस्थान और उसी के क्षण भर बाद ही विनोद भी

उसका अनुगमन करता है। उमा विस्फारित मुख-नेत्र से यह सब देखती ही रह जाती है। प्रेम के अधरों के कोने पर दुःखात हँसी की क्षीण रेखा स्पष्ट है।]

उमा—यह क्या हुआ प्रेम ? यह तो सब गड़बड़ हो गया। कुछ बोलो प्रेम—

प्रेम—मैंने पहले ही कहा था अभी समय नहीं हुआ; पर आप न मानीं।

उमा—मगर मैंने तो साफ़ सब कुछ कह दिया, सब दे दिया उसको, क्या इतने से भी वह नहीं समझी ?

प्रेम—वह ख़ूब समझी। वह समझ गई, अभी तुम्हारा मन साफ नही हुआ। सुर में सुर नहीं मिला।

उमा—[फिर उसी प्रकार अधीर हो पलँग पर पछाड़ खाकर] किसी तरह भी शुद्ध नही होगा मेरा मन ? क्या मैं ऐसी ही तड़पा करूँगी मरने के बाद भी। कौन कर देगा शुद्ध मेरे मन को ? प्रेम बाबू तुम तो बहुत महान् हो, बताते क्यों नहीं। कहाँ जाऊँ, मैं क्या करूँ . . ।

प्रेम—तुम अब सो जाओ भाभी।

उमा—मुझे अब नीद कहाँ प्रेम! वे घर छोड़ कर

अगर उसके साथ चले गये तो मेरी लाश को यहाँ से तुम्हीं ले जाना।

प्रेम—वह कहीं नही जा सकते, मैं अभी उनको लिवा लाता हूँ मगर शर्त यह कि आप शात होकर सोवे।

उमा—अच्छा जाओ। [प्रेम का प्रस्थान]

तृतीय दृश्य

[कुछ दिन बाद, स्थान वही उमा का शयन-कक्ष। समय प्रातःकाल ६ बजे। पलॅग पर उमा पड़ी हुई है, पहले से कहीं अधिक कृश और निर्बल, पर चेहरे पर एक अस्वाभाविक दीप्ति। विनोद बग़ल की कुर्सी पर बैठा हुआ है, चिंतित और विषण्ण। हाथ में एक ॲगरेजी अखबार है। उत्सुकता से बार-बार कुछ पढ़ रहा है]

उमा— [अति क्षीण कंठस्वर से] निर्मला और विनोद जेल से न जाने कब छूट कर आवेंगे।

विनोद—[जल्दी जल्दी कुछ पढता हुआ मानो कोई बड़ी दिलचस्प बात पढ़ रहा हो] ठहरो, अभी बताता हूँ।

उमा—क्या इन्ही लोगो के बारे मे कोई ख़बर है क्या ?

विनोद—[सिर उठाये बिना ही] हूँ ।

उमा—[उत्तेजित हो पलँग पर बैठ जाती है] बताओ, जल्दी बताओ, क्या हुआ, क्या ? कब आ रहे हैं ? अभी तक तो यह भी नहीं मालूम हुआ कि वे दोनों जेल भेजे क्यों गये थे ।

विनोद—[एक दीर्घ निःश्वास लेकर अख़बार टेबल पर फेंक देता है] अरे तुम करती क्या हो ? शात हो लेटो । डाक्टर ने तुम्हे हर प्रकार की मानसिक उत्तेजना से दूर रहने को कहा है न ?

उमा—अब डाक्टर वैद्य का काम खतम हो चुका । बताओ । उन्हीं दोनो को एक बार देखने के लिए रुकी हुई हूँ । प्रेम से मैं एक बात का वादा कर चुकी हूँ, उसे उसी के सामने पूरा करना होगा । अच्छा, पहले यह बताओ वे दोनो क्यो जेल गये ?

विनोद—[कुछ आगा-पीछा करता हुआ] अब नहीं मानती हो तो सुनो । तुम्हारे कमरे से निकल कर निर्मला ने सविनय क़ानून भङ्ग कर जेल जाने का निश्चय किया । यदि प्रेम न होता तो शायद वह अब तक आत्मघात ही कर चुकी होती । पर प्रेम ने ही उसे ऐसा न करने पर बाध्य किया और इसके बजाय कुछ दिन के लिए जेल जाने की सलाह दी । दोनों ही

सरकार के विरुद्ध कुछ षड्यन्त्रकारी व्याख्यान देते हुए पकड़े गये। कल विचार समाप्त होने पर दोनों निर्दोष माने जाकर आज सवेरे आठ बजे छोड़ दिये जानेवाले थे। अब तक छूट गये होंगे। आते ही होंगे।

उमा—मेरी चिठ्ठी दे आये थे न जेल मे?

विनोद—हाँ, उसमें तुमने उसे शपथ देकर छूटने पर सीधे यहाँ आने को कहा है। बड़ी मुश्किल से उसने एक बार आने को कहा है।

उमा—[ज़ोर जोर से और जल्दी जल्दी साँस लेते हुए] अच्छा एक बात सुनो, बतावे। कल रात ही से मन ही मन सोच रही हूँ कि अब की उससे भेंट होते ही उसे सच्चे दिल से अपनी सगी बहन की भाँति खींच कर छाती से चिपका लूँगी। बोलो क्या कहते हो? बुरा तो नहीं मानोगे। हमारी सहायता करोगे न? बोलो! तुम्हारे प्रेम से मै वचित न हो सकूँ तभी मैं अपने समूचे प्यार की थाती उसे सौंप कर शान्ति से इस संसार से बिदा ले सकूँगी।

[विनोद विचलित हो पलँग पर जा उसे गोद में ले छलछलाई आँखों से बार-बार प्यार करने लगता है। दोनो ही की आँखो से झर-झर आँसू बहने लगते हैं। कुछ

देर दोनों चुप रहते हैं। ठीक इसी समय नर्स भीतर आती है।]

विनोद—क्या है नर्स? डाक्टर आये हैं क्या?

नर्स—जी हाँ।

विनोद—[प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करते हुए उठकर खड़ा हो जाता है। उमा हतप्राण-सी पलँग पर लेट जाती है] अच्छा नर्स, उन्हे लिवा लाओ।

[डाक्टर का प्रवेश। दाढ़ी मूँछयुक्त एक वृद्ध सज्जन। चिंतित और गंभीर। अँगरेजी ढग की पोशाक। जेब मे स्टेथेस्कोप। आते ही नाड़ी परीक्षा करते हैं और फिर हताश हो उमा की कलाई धीरे धीरे छोड़ देते हैं। दीर्घ निःश्वास। विनोद से उनकी आँखे मिल जाती हैं। दोनों मौन, कुछ देर एक दूसरे को देखते रह जाते हैं। उमा की बद आँखें इसी समय खुल जाती हैं और यह सब देखती हैं।]

उमा—डाक्टर मुझे बचाना ही होगा। निर्मला को बिना देखे न जा सकूँगी। उसे अपना सब सौंपकर आशीर्वाद देना है—अतिम आशीर्वाद। [फिर उसकी आँखे बद हो जाती हैं और दोनो हाथों की मुट्ठी बँध जाती हैं मानों कोई भयानक निश्चय कर रही हो। विनोद के आँसू नहीं रुकते। वृद्ध चिकित्सक भी अभिभूत हो विनोद से मूक कर-मर्दन कर बिदा हो

जाता है। विनोद बाहर तक पहुँचाने जाता है। नर्स सिरहाने खड़ी है]

उमा—प्रेम भैया ! मुझे तुम्हारी बातें याद हैं। मै अपना सब दूँगी उसे। दूँगी, दूँगी। तुम कहाँ हो . [इसके बाद आँखे बदकर पड़ रहती है। ओठ धीरे धीरे हिलते रहते हैं मानो कुछ कह रहे हैं। ठीक इसी समय विनोद निर्मला का हाथ पकड़े हुए कमरे में प्रवेश करता है। निर्मला कुछ कृश हो गई है। एक सादी साड़ी पहने है। केश खुले हैं। प्रेम भी कुछ मलिन वेश मे है। दाढ़ी मूँछे कुछ बढ़ी हुई हैं। उमा धीरे धीरे कहती है] प्रेम भैया—

विनोद—[उमा के कान के पास मुँह ले जाकर] उमा—देखो तो कौन आये हैं।

उमा—[क्षण भर के लिए आँखे खोलकर] अच्छा तुम बाहर जाओ।

[विनोद और प्रेम बाहर चले जाते हैं। निर्मला झुककर उमा के पैर छूकर प्रणाम करती है। पर उसका स्पर्श होते ही मानो बिजली के धक्के से उमा का सारा निस्पद शरीर सिहर उठता है। पैर तेजी से हट जाते हैं। भर्राई आवाज से, अस्वाभाविक रूप से चिल्ला कर कहती है] नहीं होगा ! यह नही होगा मुझसे ! [इतना कहते कहते

मानो उसके शरीर में असाधारण बल आ जाता है। उसकी आँखे फैल जाती हैं और जलते हुए अगारे की भाँति सुर्ख़ हो जाती हैं। वह यकायक पलँग पर बैठकर मज़बूती से निर्मला का हाथ पकड़ लेती है और आग्नेय दृष्टि से उसे घूरती हुई कहती है] राक्षसी, तू यहाँ क्यों आई ? तेरा यहाँ क्या है ? मैं मरूँगी नहीं, रहूँगी ! रहूँगी !! [फिर यकायक नीचे उतरकर खड़ी हो जाती है और अपनी शेष शक्ति लगा अमानुषिक स्वर से कहने लगती है] भाग, भाग डाइन यहाँ से ! तू मेरा सर्वस्व लेने आई है ? अभी मुँह काला कर यहाँ से, नहीं तो जन्म भर तेरा ख़ून चूसूँगी मैं ! तू—[इतना कह कर हतप्राण हो शरीर की सारी शक्ति ख़र्च कर फ़र्श पर लुढ़क जाती है। निर्मला सन्नाटे में आकर चित्रलिखी-सी सब देखती रह जाती है। हल्ला सुनकर बाहर से विनोद और प्रेम दौड़कर आते हैं। उमा के अन्तिम शब्द सुनकर वह दोनो दहलीज ही पर टिक जाते हैं। पर्दा गिरता है।*]

---

* इस नाटक की कथा वस्तु के लिए लेखक टैगोर की अपूर्व कृति 'मालच' का ऋणी है।